धन्यवाद

यह "चतुर्विंशतिका स्तुति" गृहस्थोंके लिये अत्यन्त उपयोगी और संग्रहणीय ग्रन्थ है। इसका प्रकाशन श्रीमती ब्रह्मचारिणी गुलाबबाईजी तथा उनके भाई धर्मपरायण सेठ मोतीलालजी केसरीमलजी छावड़ा निवाई (जयपुर) वालोंने ज्ञानावरणीय कर्म-क्षयार्थ स्वकीय द्रव्यसे किया है। इसके लिये हम ब्रह्मचारिणी श्री गुलाबबाईजी तथा उनके भाई सेठ मोतीलालजी केसरी-मलजी छावडा सा० को भूरि भूरि धन्य-वाद देते हैं।

मन्त्री—
श्री आचार्य शांतिसागर छाणी ग्रन्थमाला
सागवाड़ा (डूंगरपुर)।

वीतराग तपोमूर्ति दिगम्बर जैनाचार्य—

श्री १०८ आचार्य-शिरोमणि शान्तिसागर जी
महाराज (दाक्षिणात्य)

विजेता मोहमल्लस्य, कलिकालस्य तीर्थंकृत ।
योगीन्द्रः साधुसंपूज्य, पातु नः शान्तिसागरः ॥

समर्पण

विश्वभारत में जिन-धर्म का उद्धार करनेवाले कलिकाल-तीर्थङ्कर, जगद्गुरु, श्रीमदाचार्यवर्य, पूज्यपाद गुरुवर्य श्री १०८ श्री शान्तिसागर जी महाराज के पवित्र चरणकमलों में आचार्यभक्ति एवं कायोत्सर्गपूर्वक, शुद्धभावना से त्रिकाल नमोऽस्तु ३ करता हुआ मैं यह विनम्र निवेदन करता हूँ—

भगवन् !

आप ही की पूर्ण कृपा से मैं ने निर्ग्रन्थ वीतराग एवं रत्नत्रयात्मक यह विशुद्ध स्वरूप प्राप्त किया है। और आप की भक्ति के प्रसाद का ही परिणाम यह स्तुतिपुष्पस्तवक है, इस लिये आप के ही पुनीत करकमलों मे इसे सादर समर्पित करता हूँ। साथ ही यह भावना रखता हूँ कि जिस का यह पुष्प है वह भक्तिवल्लरी मेरे हृदय मन्दिर में सदैव पुष्पाङ्कित बनी रहे !

श्री आचार्यपादेन्दुचकोर—

मुनि सुधर्मसागर

"श्रीमदाचार्यवर्यशान्तिसागरपरमेष्ठिने नमः"

ग्रन्थकर्त्ता और ग्रन्थ का
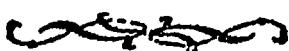
संक्षिप्त परिचय

यह 'चतुर्विंशतिका' स्तुति परम पूज्य धर्मोद्धारक श्री १०८ श्री मुनिराज सुधर्मसागर जी महाराज ने श्री वीर नि० सं० २४६१ में बनाई है। महाराज का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है:—

यू० पी० प्रान्त मे आगरा के निकट एक 'चावली' ग्राम है। इसी गाँव मे पद्मावतीपुरवाल जाति को अलंकृत करने वाले लाला श्री तोतारामजी रहते थे, वे अत्यन्त धर्मात्मा, गांव में बहुत प्रतिष्ठित एवं जाति मे सम्मान्य थे। वे प्रसिद्ध सज्जन, परोपकारी और अनुभवी वैद्य थे। पन्तु वैद्यक कार्य आजीविका के लिये नहीं किन्तु केवल परोपकार के लिये—बिना कुछ लिये ही करते थे। इसी लिये गाँव के शिरोमणि गिने जाते थे।

आप के छह पुत्र हुए—भाई रामलालजी सब से बड़े पुत्र थे' जो आजन्म ब्रह्मचारी रहे। उन की सरलता और सज्जनता आस पास सर्वत्र प्रसिद्ध थी। आपने वि० स० १६७० में इस पर्याय को छोड़ दिया था।

पांच पुत्र उपस्थित हैं। जिन मे इस संस्कृत ग्रन्थ के रचयिता परमपूज्य १०८ श्री सुधर्मसागर जी महाराज की पूर्व गृहस्थावस्था से दो भाई बडे हैं और दो उन से छोटे हैं। श्रद्धेय भाई मिट्ठनलाल जी और धर्मरत्न पं० लालाराम जी शास्त्री उनसे बडे हैं और मैं (मक्खनलाल शास्त्री) तथा बाबू श्रीलालजी जौहरी, ये दोनो भाई उन से छोटे हैं। जौहरी श्रीलालजी सपरिवार पहले बम्बई और अब जयपुर रहते हुये जवाहरात का स्वतन्त्र व्यापार करते हैं। भाई मिट्ठनलाल जी घर पर रह कर व्यवसाय करते हैं, इन्होंने स्वर्गीय पं० छेदालाल जी से संस्कृत का अध्ययन किया था। उन से छोटे श्री० धर्मरत्न श्रद्धेय पं० लालाराम जी शास्त्री हैं। इन्हों ने आदिपुराण, उत्तरपुराण आदि करीब ४० चालीस बड़े बडे संस्कृत ग्रन्थों का सरल हिन्दी भाषा में उत्तम अनुवाद कर हिन्दी भाषाभाषी स्वाध्याय-प्रिय पुरुषों को बहुत ही उपकृत बनाया है। आपने ही सर्व साधारण के लाभ के लिये इस संस्कृत चतुर्विंशतिका स्तुतिका हिन्दी भाषा मे अर्थानुवाद किया है, जो बहुत रोचक और अतीव सरल है। आप समाज-प्रसिद्ध गण्यमान विद्वानों मे एक हैं। भारतवर्षीय दि० जैन महासभा के आप स० महा मन्त्री हैं।

आपकी धार्मिक सेवा से प्रसन्न होकर उक्त महासभा ने आप को 'धर्मरत्न' पद से विभूषित किया है। आप इस समय अपने परिवार सहित मैनपुरी में रहते हैं। वहां आप की सराफे की दुकान है।

(श्री १०८ श्रीमुनिराज सुधर्मसागरजी महाराज का परिचय)

श्री० धर्मरत्न पं० लालाराम जी शास्त्री से छोटे भाई श्री० श्रद्धेय पं० नन्दनलाल जी शास्त्री हैं, जिन का कि मुनिपद में परम-पूज्य 'सुधर्मसागर' जी यहदीक्षित नाम रक्खा गया है। आप का जन्म वि० सं० १९४२ भादो सुदी १०मी को हुआ था। आपने प्रारम्भ मे गाँव के सरकारी स्कूल मे कुछ वर्ष अध्ययन किया था। पीछे 'दि० जैनमहाविद्यालय, मथुरा' और 'सेठ हीराचन्द गुमानजी-जैनबोर्डिंग बम्बई' मे रह कर शास्त्री तक सिद्धान्त, न्याय, व्याकरण, साहित्य, संस्कृत ग्रन्थो का अध्ययन किया था। तथा भा० दि० जैन महासभाश्रित परीक्षालय से और बम्बई परीक्षालय से नियमानुसार 'शास्त्री' पद प्राप्त किया है। इस लिये आप संस्कृत शास्त्रो के एक उच्चत्तम प्रौढ़ विद्वान् हैं। गोमट्टसारादि सिद्धान्त ग्रन्थों का अध्ययन आप ने कुछ वर्ष मोरेना (ग्वालियर) मे रह कर स्याद्वादवारिधि न्यायवाचस्पति वादिगजकेसरी स्वर्गीय पं० गोपालदास जी वरैया से किया है। इस लिये आप सिद्धान्त शास्त्रो के भी मर्मज्ञ विद्वान् हैं। आप व्याख्याता भी प्रसिद्ध हैं। किसी भी विषय का प्रतिपादन दो-दो, तीन-तीन घण्टे धारावाही बोलते हुये गहरे विवेचन पूर्वक करते हैं। जैसे आप व्याख्याता है उसी प्रकार गण्यमान्य सुलेखक भी हैं। आप के लेख गृहस्था-वस्था मे 'जैन गजट' आदि पत्रों में सदैव निकलते रहे हैं। इस के सिवाय आप ने कई ट्रेक्ट धार्मिक एवं सामाजिक विषयो पर अत्युपयोगो लिखे हैं।

संस्कृत रचना के सिवाय हिन्दी कविता भी आप पिंगल

छन्दः शास्त्र के अनुसार बहुत मधुर और अतिशीघ्र बनाते हैं। आप की हिन्दी कविता का परिचय पाठकों को आप की बनाई हुईं पूजनों आदि से होगा। चौबीस भगवान् की पूजन, तारंगा पूजन, दीपावली महावीर स्वामी की पूजन आदि कई भावपूर्ण और भक्तिरस से समन्वित, हिन्दी भाषा में पूजनों की आप ने रचना की है। इन में कतिपय पूजन मुद्रित भी हो चुकी हैं।

आप बचपन से ही उदारचेता, अत्यन्त सरल स्वभावी और उत्साही हैं। विक्रम सं० १९७५ में आप की सौ० सहधर्मिणी का स्वर्गवास हो गया था। आप के एक सुपुत्र हैं, जिन का नाम चि० जयकुमार है। वे इस समय करीब २४ वर्ष के हैं। इन का विवाह हो चुका है। कुछ वर्ष मोरेना विद्यालय में संस्कृत और सिद्धान्त ग्रन्थों का अध्ययन कर कलकत्ता के आयुर्वेद कालेज में ५ व' अध्ययन कर अब ये आयुर्वेदाचार्य हो गये हैं।

कुछ वर्ष श्री० पण्डित नन्दनलाल जी शास्त्री ने ईडर और बम्बई के 'सरस्वती भवन' में कार्य किया है। ईडर मे रह कर आप ने दो कार्य मुख्यरूप से किये थे। एक तो वहाँ के शास्त्र-भण्डार की सम्हाल और अवलोकन, दूसरा कार्य—गुजरात प्रान्त के भाइयों मे धार्मिक जागृति का संचार।

इस के सिवाय ईडर में ही आप ने परम पूज्य १०८ श्री शान्ति-सागर जी महाराज छांणी वालों को उन की ब्रह्मचारी अवस्था मे अध्ययन भी कराया था और आत्मोन्नति मार्ग में आगे बढ़ने के लिये उन्हें प्रेरित भी किया था। तथा परमपूज्य आचार्य शान्ति-

सागर जी छांणी वालो के साथ आपने अनेक भीलो ने मद्य मांस एवं हिंसा का त्याग कराया था। और भूखिया के ठाकुर कूरसिंह जी राजा को जैनो बनवाया था एवं उनसे एक दि० जैन मन्दिर भी बनवाया था।

ईडर रहकर और भी आप ने बहुत से छोटे-मोटे कार्य किये थे। जैसे:—

वहां के पहाड़ी स्थानो में जगह २ दिगम्बर जैन प्रतिमाओं का अन्वेषण करना आदि ।

बम्बई में रहकर भी आप ने अनेक धार्मिक कार्यों मे समय समय पर सहायता पहुँचाई थी। आप का भा० दि० जैन महासभा जैसी धार्मिक संस्थाओं से सदैव से अनुराग रहा है और उन मे आप सदैव भाग लेते रहे हैं।

बम्बई मे रहकर आप ने सब से बड़ा और स्वर्णाक्षरों में अङ्कित करने योग्य यह काम किया था कि वहां के प्रसिद्ध धर्मात्मा संघभक्त शिरोमणि समाजरत्न सेठ पूनमचन्द्रजी घासीलाल जी जव्हेरी तथा उन के तीनो सुपुत्र—सं०भ०शि० समाजरत्न सेठ गेंदमलजी, सेठ दाढिमचन्दजी व सेठ मोतीलालजी जव्हेरी को इस महान् और असाधारण कार्य के लिये प्रेरित एवं तैयार किया कि वे परमपूज्य १०८ आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज का संघ दक्षिण से उत्तर भारत में लावें। उत्तर प्रान्त के जैन समुदाय के असीम कल्याण की आपकी प्रबल भावना और प्रेरणा का प्रभाव उक्त जव्हेरी कुटुम्ब पर बहुत पड़ा और परिणाम स्वरूप उन्हो ने

इस महत्पुण्य-संपादक एवं जैनधर्म प्रभावक कार्य को करने का विचार दृढ़ बना लिया।

परन्तु जब तक परमपूज्य १०८ श्री आचार्य महाराज की इच्छा दक्षिण प्रान्त से उत्तर प्रान्त मे आने की नहीं हो तब तक ४-५ लाख रुपये खर्च कर संघ को लाने एवं प्रतिष्ठा आदि महान् कार्य कराने के विचार भी कार्यकारी नहीं हो सकते इस लिये श्रीमान् पूज्य पं० नन्दनलालजी शास्त्री (वर्तमान मुनिराज १०८ श्री सुधर्मसागरजी महाराज) स्वयं कई वार दक्षिण में परम पूज्य आचार्य महाराज एव संघ के दर्शनार्थ गये थे और वहा बड़ी भक्ति और नम्रता से उन के चरणो मे उत्तर प्रान्त के उद्धार की भावना उन्हो ने प्रगट की, तथा उस का सब से बड़ा अमोघ उपाय परमपूज्य आचार्य महाराज का उत्तर भारत मे विहार होना आवश्यक बताया, परन्तु निर्ग्रन्थ वीतराग तपस्वी आचार्य महाराज ने उत्तर प्रान्त के जैनियों के उद्धार की भावना को उत्तम समझते हुये भी उस समय उधर विहार करने के लिये निषेध कर दिया। उन्होने उन्ही दक्षिण की एकान्त निर्जन पहाडी गुहा, मठ आदि स्थानो मे आत्मसिद्धि का अधिक साधन समझा, और "फिर देखा जायगा", ऐसा कुछ आशा झलक दिलाने वालों उत्तर दे दिया। हमारे पूज्य शास्त्री जी और उक्त जव्हेरी जी उस समय निराश होकर किन्तु कुछ आशा की झलक का बीज बो-कर बम्बई लौट आए, भावना ने दूसरी वर्ष पुनः प्रेरित किया। शास्त्री जी तथा जव्हेरी जी पुनः आचार्य-चरणो मे निवेदन करने के लिये दक्षिण गये और वहीं पर शास्त्रीजी ने परमपूज्य आचार्य

महाराज से द्वितीयप्रतिमा के व्रत ग्रहण किये ! उसी समय आचार्य महाराज ने उनसे कहा था कि संघ में तुम्हारे जैसे विद्वान् की बहुत जरूरत है। उस समय जैन गजट के सम्पादक के नाते बेलगांव-केश चलने के निमित्त से परमपूज्य आचार्य महाराज के दर्शनार्थ श्री पं० लालारामजी शास्त्री भी वहां पहुंचे थे और इन पंक्तियों का लेखक (मैं) भी पहुंचा था। अस्तुः

इस प्रकार जव्हेरी जी और शास्त्री जी द्वारा वार २ प्रार्थना करने के पश्चात् श्री सम्मेदशिखर आदि सिद्ध क्षेत्रों की वन्दना और उत्तर प्रान्त के जैनियों के उद्धार की भावना रखकर परमपूज्य आचार्य महाराज का संघ दक्षिण से उत्तर प्रान्त में विहार करने लगा। संघ के विहार से वि० सं० १६८४ में श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र पर जो संघभक्त शिरोमणि सेठ पूनमचन्द घासीलाल जी जव्हेरी जी द्वारा श्री पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा हुई थी, उस समय वहाँ सिद्ध क्षेत्र की वन्दना, पंच कल्याणकों का दर्शन और परमपूज्य वीतराग ऋषि आचार्यसंघ वंदना के लिये करीब सवा लक्ष दि० जैन-समुदाय इकट्ठा हुआ था। वह उत्सव भी एक अभूतपूर्व उत्सव हुआ।

सप्तम प्रतिमा दीक्षा

उसी परम पावन सम्मेदशिखर सिद्ध क्षेत्र पर फागुन सुदी १३ वी० नि० सं० २४५४ के शुभ मुहूर्त मे परमपूज्य १०८ श्री आचार्य शान्तिसागर जी महाराज से उक्त श्री० पं० नंदनलालजी शास्त्री ने ग्रहस्थाश्रम से विरक्त होकर सप्तम प्रतिमा के व्रत लिये

थे। उस समय परम गुरु आचार्य महाराज ने उनका दीक्षित नाम, ब्रह्मचारी ज्ञानचन्द्र रक्खा था। उसी समयशास्त्री परिषद् की बैठक में पूज्य ब्र० ज्ञानचन्द्रजी महाराज ने करीब २ घंटा तक शास्त्रियों के कर्तव्य और जैनधर्म के रहस्य पर मर्मस्पर्शी तात्त्विक विवेचन किया था। आप के भाषण का प्रभाव उपस्थित सभी शास्त्री-विद्वानों पर बहुत पड़ा था। वहीं पर दि० जैन शास्त्री परिषद् ने अत्यंत हर्ष प्रगट करते हुए एक उद्भट शास्त्री विद्वान् के आदर्श त्यागी होने पर गौरवा धायक प्रस्ताव पास किया था।

जिस समय श्री० आचार्य संघ मोरेना (ग्वालियर स्टेट) मे पहुँचा था उस समय वहाँ पर होने वाले भा० दि० शास्त्रि परिषद् के अधिवेशन के पूज्य दशम प्रतिमाधारी ज्ञानचन्द्र जी महाराज सभापति चुने गये थे। सभाध्यक्ष के नाते आप का भाषण अत्यन्त महत्त्वशाली एवं शास्त्रीय-गवेपणा-पूर्ण हुआ था,। उक्त भाषण मुद्रित हो चुका है।

'सप्तम प्रतिमा धारण करने के पश्चात् पूज्य ब्रह्मचारी ज्ञानचन्द्र जी श्री सम्मेदशिखर से लेकर सदैव परमपूज्य आचार्य महाराज के चरणों के निकट संघ के साथ ही भ्रमण करते रहे। आप की वैराग्य भावना और भी वढ़ती गई और एक ही वर्ष पीछे कुण्डलपुर क्षेत्र मे दशमी प्रतिमा आपने लेली। फिर दूसरे वर्ष में ही अलीगढ़ मे आप ने आचार्य महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ले ली। उस समय महाराज ने आपका नाम "ज्ञानसागर" रक्खा परमपूज्य १०५ श्री क्षुल्लक ज्ञानसागर जी महाराज क्षुल्लक अवस्था में रहते हुये स्वात्मोन्नति में तो निमग्न रहे ही, साथ में

उन्होंने अनेक महत्त्वशाली कार्य किये पुरुषार्थानुशासन, रयणसार, सूर्यप्रकाश, प्रतिक्रमण, षट्कर्मोपदेशरत्नमाला, उमास्वामि-कृत श्रावकाचार। परमार्थोपदेश गुणभूषण श्रावकाचार आदि संस्कृत ग्रन्थों की आप ने टीकाएँ की हैं। गुजराती भाषा में भी कई ग्रन्थ लिखे हैं। अंग्रेजी भाषा का भी थोडा सा अभ्यास आप ने किया है। कई स्वतन्त्र ट्रैक्ट भी लिखे है। जैसे-जीवविचार,कर्मविचार, दानविचार आदि कई अत्युपयोगी ट्रैक्ट आप ने लिखे हैं। यज्ञोपवीत संस्कार ट्रैक्ट आप का बनाया हुआ दो भागो मे छपा है, जो कि बहुत बड़ा है। आप के रचे हुये ट्रैक्टो का समाज ने बहुत ही आदर किया है और उन से बहुत लाभ उठाया है। भा० दि० जैन महासभा ने भी उन्हे छपाकर सर्वत्र वितरण कराया है।

आप के ही आदेश से अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय. साधु इन पाँचों परमेष्ठियों की पाँच प्रतिमाएँ—परमेष्ठियो का भिन्न २ स्वरूप प्रगट करने वाली ३-३ फीट ऊँची शुक्ल पाषाण की अत्यन्त मनोज्ञ-चित्ताकर्षक श्री गजपंथ सिद्ध क्षेत्र पर हम सब सहोदर भाइयो ने विराजमान कराई है। श्री वीर नि० सं० २४६० में जब शोलापुर के प्रसिद्ध सेठ पूज्य ब्र० जी जीवराजजी गौतमचन्द जी दोशी ने वहाँ पर नवीन मन्दिर का निर्माण और श्री पंच कल्याणक महोत्सव कराया था उसी मे ये पाँचों प्रतिमाएँ भी प्रतिष्ठित हुई थीं। तथा उस क्षेत्र के सुयोग्य सभापति उक्त सेठ जीवराज भाई व वहाँ की कमेटी के माननीय सदस्य महानुभावों की धार्मिक स्नेह पूर्ण अनुमति से गजपंथ क्षेत्र के पहाड़ पर

केन्द्रीभूत मध्य गुहा में ही ये पाँचों प्रतिबिम्ब विराजमान हो गये हैं।

इसी प्रकार देहली के—धर्म पुरा के छोटे मन्दिर जी में आष्ट प्राति हार्य सहित अतीव रमणीय ३ फीट ऊँची प्रतिमा हम ने विराजमान कराई है, ये सब महत्पुण्य फलप्रद वृहत्कार्य परम पूज्य १०५ श्री क्षुल्लक ज्ञान सागर जी महाराज के-जिनेन्द्र भक्ति सूचक-आदेश से ही हुए हैं।

आप ने गृहस्थावस्था में भी एक चाँदी की सुन्दर खड्गासन प्रतिमा वनवाई थी जो कि आप के गृह-विरत होने पर मोरेना में विराजमान करदी गई थी। अस्तु।

संघ में रहकर सघ से बड़ा कार्य

परमपूज्य क्षुल्लक ज्ञानसागर जी महाराज ने संघ में रहकर सब से बडा काम यह किया है कि संघ के समस्त परमपूज्य मुनिराजो एवं क्षुल्लकों को संस्कृत का अध्ययन कराया। उस का परिणाम वहुत जल्दी सिद्ध हुआ। कुछ ही वर्ष मे परमपूज्य १०८ श्री मुनिराज नेमिसागर जी, मुनिराज वीरसागर जी, मुनिराज कुंथुसागर जी, मुनिराज-चन्द्रसागर जी तथा क्षुल्लक यशोधर जी, क्षुल्लक पार्श्वकीर्ति जी आदि सभी संस्कृत, व्याकरण और साहित्य के वहुत उत्तम ज्ञाता वनगये हैं। मुझे जयपुर में यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ कि सघ में उक्त सभी मुनिराज और क्षुल्लक यशोधर जी संस्कृत में खूब भाषण करते हैं। संस्कृत ग्रथों को झट लगा लेते हैं। जितनी योग्यता एक तीव्र-वुद्धि छात्र ४ वर्ष में भी कठिनता से प्राप्त कर सक्ता है उतनी योग्यता तो

साधुओं ने १ वर्ष में ही प्राप्त करली थी। अब तो वे संस्कृत के उत्तम विद्वान् बन गये हैं। यह वीतराग-तपस्विता-जनित विशुद्धवृत्ति क्षायोपशम का ही परिणाम है।

परम पूज्य क्षुल्लक ज्ञानसागर जी ने संस्कृत के अध्यापन कार्य को एक उपाध्याय परमेष्ठी के समान किया है। परम पूज्य १०८ श्री आचार्य शान्तिसागर जी महाराज कहा भी करते थे कि संघ में एक शास्त्री विद्वान् के आ जाने से उपाध्याय का कार्य होने लगा है।

इस के सिवा आचार्य महाराज की सेवा करना, समस्त संघस्थ मुनिराजों की वैय्यावृत्य करना, एक उत्तम अनुभवी वैद्य होने के कारण संघ के तपस्वियों की समय-समय पर प्रकृतियों को सम्हालना, गृहस्थों से उन की समयोचित वैय्यावृत्य कराना, विशिष्ट धर्मकार्यों को सिद्धि के लिये, संघ का विहार कराने के लिये श्रावकों को अनुमति देना, इस के सिवा शंका-समाधान एवं भाषणों द्वारा जनता को धर्मलाभ एवं धर्म मे दृढ़ता उत्पन्न कराना आदि अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य महाराज क्षुल्लक ज्ञानसागर जी ने किये हैं।

मुनिदीक्षा-समारंभ

जो पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा संघभक्त-शिरोमणि सेठ पूलमचंद घासीलाल जी जोहरी ने परतापगढ़ में कराई थी, उसी प्रतिष्ठा में केवलज्ञान कल्याणक के समय फागुन सुदी १३ वीरनि० सं० २४६० में क्षुल्लक श्रीज्ञानसागर जी ने परम पूज्य १०८ श्री आचार्य शान्तिसागर जी महाराज परम गुरु से मुक्तिदायिनी'

मुनिदीक्षा धारण कर ली। आचार्य महाराज ने उस समय आप का मुनि-अवस्था का नाम 'सुधर्मसागर' घोषित कर दिया था। यहीं पर परमपूज्य क्षुल्लक नेमिकीर्ति जी और ब्र० सालिकराम जी ने क्रम से मुनिदीक्षा और क्षुल्लकदीक्षा आचार्य महाराज से ग्रहण की थी। उस समय आचार्य महाराज ने उनका नाम क्रम से "मुनि आदिसागर" और "क्षुल्लक अजितकीर्ति" घोषित किया था। उस समय उपस्थित करीब ४०००० चालीस हजार जनता मे बहुत भारी प्रभावना हुई थी। अस्तु! बढ़ी हुई वैराग्य वृत्ति तथा ध्यानाभ्यासो के कारण श्री १०८ श्री वीतराग तपस्वी परमपूज्य मुनिराज सुधर्मसागर जी महाराज अनेक उपवास, नीरस आहार, बहुत काल तक ध्यान आदि कठिन तपश्चरण करते है। साधुपदोचित शास्त्रोक्त अट्ठावीस मूलगुणो का पालन करते हैं। ध्यानातिरिक्त समय मे शास्त्र-स्वाध्याय एवं शास्त्र-निर्माण आदि वीतराग कार्यों मे ही समय को लगाते हैं।

गुरुतर कार्य-भार

उदयपुर चातुर्मास के समय परमपूज्य आचार्य महाराज ने शिक्षा-दीक्षा देने आदि का अपना आचार्योचित कार्य-भार भी परमपूज्य मुनिराज सुधर्मसागर जी महाराज को सोप दिया है। यद्यपि महाराज सुधर्मसागर जी ने इस गुरुतर कार्य-भार को लेने से बहुत निषेध किया था और परमपूज्य आचार्य महाराज के चरणों मे नम्र प्रार्थना की थी कि स्वामिन्! आप ही इस महान् कार्य के सम्हालने में समर्थ हैं। उस प्रकार की पूर्ण सामर्थ्य मुझ

में नहीं है। इस लिये 'आप ही शिक्षा दीक्षा देने आदि कार्यों को पूर्ववत् करते रहे। विशेष कार्यों के लिये हमे आज्ञापित करें, आप को हम न तो कोई कष्ट होने देंगे और न आप के स्वतन्त्र धर्म साधन में कोई वाधा आने देगे' आदि।

जब आचार्य महाराज ने मुनिराज सुधर्मसागर जी को कार्य भार सम्हालने के लिये पुनः वाध्य किया और आज्ञा दे दी तब उन्हे उक्त कार्य सम्हालना ही पड़ा। यद्यपि मुनिराज सुधर्मसागर जी की यह उत्कट इच्छा थी कि यदि अपना कार्य आचार्य-महाराज सोपते ही हैं तो १०८ श्री मुनिराज नेमिसागर जी, मुनिराज वीरसागर जी, मुनिराज कुंथुसागर जी, इन मे से किन्हीं को सोप देवे। उक्त तीनो ही महाराज प्रभावक तपस्वी, पूर्ण विद्वान् और इस कार्य के सम्हालने के लिये सब प्रकार से योग्य हैं परन्तु उक्त मुनिराजो के भी निपेध करने पर और परमपूज्य आचार्य महाराज की आज्ञा होने पर परमपूज्य मुनिराज सुधर्मसागर जी महाराज ही अब दीक्षा-प्रदानादि कार्यों को सम्हालते हैं परन्तु परमगुरु आचार्य महाराज की अनुमति एवं उन की आज्ञा लेना प्रत्येक कार्य मे आवश्यक समझते हैं। अस्तु।

इस प्रकार पूज्य १०८ श्री मुनिराज सुधर्मसागर जी महाराज ने परमाराध्य एवं स्वात्म-चरमोन्नति-साधक मुनिपद को धारण कर अपना तो परम हित किया ही है, साथ ही आप के द्वारा धर्म एवं समाज का भी वहुत भारी हित हुआ है। जिस पद्मावतीपुरवाल पवित्र सजाति मे महाराज ने जन्म लिया है, उसे तो विभूषित किया ही है, साथ ही सप्त परमस्थानों में पारिव्राज्य (मुनिदीक्षा)

परमस्थान को धारण कर हमारे विशुद्ध कुल को भी आदर्श एवं मुनिवंश के पवित्र नाम से प्रख्यात कर दिया है। इसे मैं अपने सब कुटुम्ब का सब से वड़ा सौभाग्य समझता हूँ और महाराज सुधर्म-सागर जी के पुनीत चरणों मे नमस्कार करता हुआ यह भावना करता हूँ कि हमारी कुल परम्परा में सभी पुरुष आप के पद (मुनिपद) के ही अनुगन्ता वनते रहे।

सब से प्रधान एवं महान् उपकारी

परमपूज्य सुधर्मसागर जी का मुनिपद धारण करना, अन्य संघस्थ तपस्वी मुनिराजो का मुनिपद धारण करना, लोक में जैनधर्म का चमत्कार होना और लोकों का सच्चा हित होना, ये सब असाधारण कार्य, परमपूज्य जगद्वन्द्य लोकाराध्य आचार्य शातिसागर जी महाराज का ही प्रधान उपकार है। उन्हीं की अचिन्त्य शक्तिशाली परम तपस्विता-पूर्ण तेजोमय महान् आत्मा का यह सब कार्य है। इस युग के जैनधर्म-प्रसारक सूर्य आचार्य महाराज ही हैं। कलिकाल-तीर्थंकर धर्म-प्रवर्त्तक आचार्य महाराज हैं। इस लिये उन के परम पुनीत चरणों में मैं 'नमोऽस्तु' करता हुआ यह विशुद्ध भावना रखता हूँ कि उन की चरण पूजा एवं परोक्ष वंदना से मुझे भी उन का पद प्राप्त हो।

ग्रन्थ-परिचय

'चतुर्विंशतिका स्तुति' इस ग्रन्थ में परमपूज्य मुनिराज सुधर्मसागर जी महाराज ने भगवान् वृषभदेव से लेकर भगवान् महावीरस्वामी पर्यंत चावीसो भगवानो की स्तुति की है। प्रत्येक भगवान् की स्तुति मे १०-१० श्लोक तो बनाये ही हैं परन्तु किन्हीं २ भगवान् की स्तुति मे १२-१५ श्लोक भी उन्हों ने रचे हैं। अंतिम भगवान् महावीरस्वामी की स्तुति में और भी अधिक श्लोकों की रचना की है। इस प्रकार चौवीसो भगवानो की स्तुति में करीब ३०० तीन सौ श्लोक महाराज सुधर्मसागर जी ने रचे हैं। इस संस्कृत स्तुति की रचना मे इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा छन्दों का अधिक उपयोग किया गया है।

संस्कृत रचना प्रसादगुण-युक्त है, शब्द-सौष्ठव और भाव सौष्ठव से परिपूर्ण है। श्लोक-रचना में कहीं २ पर विरोधालंकार भी दिखाया गया है। जैसे कि नमिनाथ भगवान् की स्तुति मे कहा गया है।

निःशस्त्रकस्त्वं ह्यभयस्य दाता, मोहारिजेतापि च कोपहीनः।
त्वं निर्मदो मारमदस्य हर्ता, अचिन्त्यनीया महिमा प्रभोस्ते ॥
निरक्षरा गीरपि सत्यवक्ता, रागैर्विमुक्तश्चहितोपदेशी।
ब्रमव्रती मोक्षवधूपभोक्ता, अचिन्त्यनीया महिमा प्रभोस्ते

इस प्रकार के और भी कई श्लोक हैं।

विशेष बात यह है कि प्रत्येक भगवान् के स्तवन मे ग्रन्थकर्ता मुनिराज ने भक्ति रस तो कूट २ कर भर ही दिया है, साथ ही उन्हों ने भिन्न २ तीर्थंकर की स्तुति मे भिन्न २ विषयों का प्रतिपादन बहुत ही उत्तमता से किया है। जैसे—

आदिनाथ भगवान् के स्तवन मे वर्णों की अनादिता एवं यज्ञोपवीत संस्कार के सद्भाव का वर्णन किया है। अजितनाथ भगवान् के स्तवन मे एकान्त तत्त्वो का खण्डन बडी स्फुटता से किया है। जैसे—

नित्ये पदार्थे हि कथं क्रिया स्यात् प्रोक्तौ त्वनित्ये न हि बंधमोक्षौ।
एकान्ततो वस्तु भवेच्च शून्यं, स्याद्वादविद्यापतिना जिनेन॥

भगवान् पद्मप्रभु की स्तुति में कहा गया है कि हे भगवन्! आप के चरण कमलो की लक्ष्मी को देख कर यह लोक-प्रसिद्ध लक्ष्मी अपने को तुच्छ समझकर लज्जित हो गई और सरोवर मे चली गई अर्थात् लज्जा के कारण पानी मे डूब गई। इस प्रकरण के श्लोक और भी कई हैं, जो बहुत रुचिकर और साहित्य सौन्दर्य से युक्त हैं।

किसी २ विवेचन में स्तुतिवाद के साथ-साथ परमत-खण्डन के लिये अकाट्य हेतुवाद भी ग्रन्थकार महोदय ने बहुत उत्तम दिया है। जैसे भगवान् वासुपूज्य की स्तुति में दश केवलज्ञान के अतिशयों का वर्णन करते हुए केवली भगवान् के कवलाहार क्यो नहीं हो सकता? इस का समाधान इस प्रकार किया है—

प्रक्षीणमोहस्य नवास्ति भुक्तिर्नासातवेदस्य विपाकनाशात्।
अनन्त सौख्यामृतभुक्तितृप्तेस्तद्भुक्त्यभावं जिनपं नमामि॥

इसी प्रकार किन्हीं भगवान् के स्तवन में पञ्चकल्याणक वर्णन, किन्ही के में दिव्यध्वनि-निरूपण, कहीं पर स्तवन-पूजन, कहीं पर द्रव्य-गुण-पर्यायो की भेदाभेद-विवक्षा, कहीं पर व्रतों का वर्णन, कहीं पर जन्मातिशय का स्वरूप, कहीं पर विश्वदेव का रूप आदि विषयो का निरूपण बहुत उत्तमता एवं रोचकता के साथ किया है।

भगवान् महावीरस्वामी की स्तुति में तो शास्त्र-रहस्य-वेत्ता ग्रंथ-रचयिता महाराज ने अनेक शास्त्रों का सार और महावीर स्वामी का आदेश अतीव स्फुटता के साथ बतलाया है। इस लिये यह चतुर्विंशतिका स्तुति, स्तुति-ग्रन्थ भी है और सिद्धान्त-प्रतिपादक भी है।

इस ग्रन्थ की हिन्दी भाषा टीका बन जाने से इस ग्रन्थ में निरूपित किये गये विषयों का परिज्ञान होने में अब कोई कठिनता नहीं रही है।

ग्रन्थ के अन्त में मुनिराज सुधर्मसागर जी ने एक 'शान्ति-पौर्णिमा' नामक संस्कृत स्तोत्र बनाया है, उस मे पन्द्रह श्लोक हैं। इस स्तोत्र द्वारा परम पूज्य १०८ श्री आचार्य शान्तिसागर जी महाराज के अलौकिक एवं अचिन्त्य गुणो एवं उन की चर्या का वर्णन कर उन के शिष्य-प्रवर मुनिराज सुधर्मसागर जी ने अपने परम गुरु आचार्य महाराज में अपनी अनन्य भक्ति और हार्दिक श्रद्धा प्रगट की है।

इस 'शान्ति-पौर्णिमा' का हिन्दी अनुवाद भी श्रद्धेय धर्मरत्न पं० लालाराम जी शास्त्री ने कर दिया है। इसी ग्रन्थ के

अन्त मे श्रीकेशरियानाथ का संस्कृत स्तवन भी जोड दिया गया है। जिस समय वीर नि० सं० २४६१ मे परम पूज्य मुनिराज १०८ श्रीसुधर्मसागर जी महाराज विहार करते हुए संघ के साथ 'श्रीकेशरियानाथ' १००८ श्रीवृषभदेव की वन्दना को गये थे, उस समय उसी जिनालय में बैठ कर उन्हों ने यह केशरियानाथ स्तवन शिखरिणी छन्द मे रचा है। इस स्तवन मे उस जिनालय के समस्त भागो का वर्णन है, कहां पर कोट है, कहा गलियां हैं, कहां पर हाथी (पत्थर के) खड़े हैं, कहा वेदी है, इत्यादि समस्त वर्णन करने के साथ फिर देवाधिदेव वृषभदेव की स्तुति की गई है। जो कोई श्रीकेशरियानाथ जी की वंदना को अभी तक नहीं जा सके हो, तो उन्हें भी इस संस्कृत स्तुति के पढ़ने से भक्ति के साथ २ वहां के विशाल जिनालय की रचना का स्वरूप भी दृष्टि में आने लगता है और वहुत ही आनन्द आता है।

मोरेना (ग्वालियर)
ता० २५।१०।३५

श्रीआचार्य-चरण-चञ्चरीक—
मक्खनलाल शास्त्री
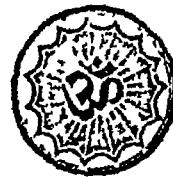
श्री १०८ श्री मुनिराज श्रीसुधर्मसागरजी महाराज-विरचिता

चतुर्विंशतिका स्तुतिः ।

भगवान् वृषभदेव की स्तुति

श्रीनाभिसूनोः पदपुंडरीकः, श्रियं विदत्तात्सुखशांतिरूपाम् ।
यं प्राप्य भव्या अतिदुर्लभं तं, गच्छन्ति पारं भवदुःखवार्धेः ॥

अर्थ—भगवान् श्रीऋषभदेव के चरण कमल हम भव्य जीवों को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र रूपी लक्ष्मी देवें। वह रत्नत्रयरूपी लक्ष्मी सुख स्वरूप है, शांति स्वरूप है तथा उन भगवान् ऋषभदेव के अत्यन्त दुर्लभ चरण कमल को पाकर ही भव्य जीव इस अपार संसार के महादुःखरूपी समुद्र से पार हो जाते हैं।

वैदेहतो वर्णमयीं व्यवस्थां, संस्थापयामास जगद्धिताय ।
अनादिसृष्टेः प्रभवस्य बीजं, कार्यक्रमं यो व्यरचत्सुसृष्टा ॥२॥

अर्थ—विदेह क्षेत्र में क्षत्रिय वैश्य शूद्र रूप जैसी वर्ण-व्यवस्था अनादि काल से चली आरही है वही वर्ण-व्यवस्था

आदि सृष्टा भगवान् वृषभदेव ने संसारी जीवों का हित करने के लिये स्थापन की। तथा अनादि काल से चली आई इस सृष्टि को सदा प्रचलित रहने के कारण जो जो कार्यक्रम थे वे सब भगवान् ने प्रगट किये।

अनादिसंस्कारविधिं तदानीमुद्घोषयामास स आदिस्रष्टा।
संस्कारयोगेन च कर्मभूमौ, शिवप्रवृत्तिश्च भवेत्सदैव ॥३॥

अर्थ—आदि सृष्टा भगवान् वृषभदेव ने उसी समय अर्थात् कर्मभूमि के प्रारम्भ मे ही अनादि काल से चली आई संस्कार विधियो की भी घोषणा की थी सो ठीक ही है क्योंकि इस कर्म-भूमि मे संस्कारों के निमित्त से ही सदा मोक्ष की प्रवृत्ति होती है।

अनादिरत्नत्रयचिह्नरूपं, यज्ञोपवीतं स्वयमत्र येन।
धृत निजान् तान् भरतादिपुत्रान्, संस्कारशुद्ध्यै भुवि धारितं तत् ४।

अर्थ—रत्नत्रय का चिह्न स्वरूप यह यज्ञोपवीत अनादि काल से चला आरहा है। इस संसार मे संस्कारो को शुद्ध बनाये रखने के लिये भगवान् वृषभदेवने उस यज्ञोपवीत को स्वयं धारण किया और अपने भरत बाहुबलि आदि समस्त पुत्रो को धारण कराया।

राज्यव्यवस्थां नगरादिरूपां, नीतिं चतुर्द्धा शुभकार्यरूपाम्।
सम्राड् जिनेन्द्रः पुरुदेवराजः, संस्थापयामास जगद्धिताय ॥५॥

अर्थ—सम्राट् जिनेन्द्रदेव भगवान् वृषभदेव ने संसारी जीवो का हित करने के लिये शुभ कार्यों को प्रचलित करनेवाली नगर गाँव पट्टनादि रूप राज्य-व्यवस्था स्थापन की थी तथा साम-दाम-दंड-भेद रूप चार प्रकार की नीति स्थापन की थी।

तदा प्रजानां स जिनो युगादौ, हितं समस्तं निरपेक्षवृत्त्या ।
शुभं सदाचारमयं चकार, स्रष्टा ततोसौ स जिनस्तदानीम् ॥६॥

अर्थ—उस समय कर्मभूमि के प्रारम्भ मे भगवान् वृषभदेव ने निरपेक्ष वृत्ति से प्रजा का हित करने वाले कल्याण करने वाले और सदाचार को बढ़ाने वाले ऐसे समस्त कार्यों की प्रवृत्ति बतलाई थी। इसीलिए वे भगवान् वृषभदेव उस समय सृष्टा, विधाता, ब्रह्मा वा आदि ब्रह्मा के नाम से कहे जाते थे।

दीर्घेण कालेन गतं प्रणष्टं, श्रेयःस्वरूपं भुवि मोक्षमार्गम् ।
देवीसभायां प्रकटीचकार, वंदामि तं ब्रह्मजिनं युगेशम् ॥७॥

अर्थ—समस्त जीवो का कल्याण करनेवाला यह मोक्षमार्ग इस भरत क्षेत्र में बहुत दिनो से नष्ट हो रहा था। उसको भगवान् वृषभदेव ने अपनी समवसरण-सभा मे प्रगट किया ऐसे आदि ब्रह्मा को और इस युग के स्वामी भगवान् वृषभदेव को मैं नमस्कार करता हूं।

संसारसौख्याय जलांजलिं यो, दत्वा च त्यक्त्वा सुखराज्यभोगम् ।
कृत्वा तपस्तीव्रतरं प्रदीप्तं, कर्माणि चोच्छिद्य जगाम मोक्षम् ॥८॥

अर्थ—भगवान् वृषभदेव ने सब से पहले सांसारिक सुखो को जलांजलि दी। फिर सुख और राज्यके भोगों का त्याग किया तथा अत्यन्त तीव्र और घोर तपश्चरण किया। उस तपश्चरण से कर्मों का नाश किया और फिर वे भगवान् मोक्ष मे जा विराजमान हुए।

त्वं नाथ ! गीतोसि पुराणवेदे, जगत्पिता शासक आदिस्रष्टा ।
विभुः स्वयंभूः शिवभूरजन्मा, आदीश्वरो लोकपितामहो वा ॥९॥

अर्थ— हे नाथ ! अनादि काल से चले आये स्याद्वादमय श्रुत-ज्ञान मे आप जगत्पिता, शासक, आदिसृष्टा, विभु (ज्ञान के द्वारा सर्वत्र व्यापक), स्वयंभू (अपने आप उत्पन्न होने वाले), शिवभू (जिन का जन्म सव जीवों को कल्याणमय हो), अजन्मा (जन्म-रहित) आदीश्वर और तीनों लोकों के पितामह आदि नामों से कहे जाते हैं।

वेदप्रकाशाय नमोस्तु तुभ्य, संस्कारदात्रे च नमोस्तु तुभ्यम् ।
वर्णादिकर्त्रे हि नमोस्तु तुभ्यं, मोक्षस्वरूपाय नमोस्तु तुभ्य ॥

अर्थ—हे प्रभो ! आप स्याद्वादमय 'श्रुतज्ञान' को प्रकाशित करनेवाले हैं, इसलिये आप को नमस्कार हो। आप संस्कारों का प्रचार करनेवाले हैं, इसलिये आप को नमस्कर हो । आप वर्ण-व्यवस्था को स्थापन करनेवाले हैं, इसलिये आप को नमस्कार हो और आप साक्षात् मोक्ष स्वरूप हैं, इसलिये आप को नमस्कार हो।

———

भगवान् अजितनाथ की स्तुति

मोहारिमल्लोन्मदभंजनैको, वीरस्त्वमेवासि विभो जगत्याम् ।
दुर्वारवीर्योद्भूतशक्तिरूपं, वंदामि तस्मादजितं जिनेशम् ॥१॥

अर्थ—हे प्रभो ! आप इस संसार मे मोह रूपी महामल्ल रूप शत्रु के मद को नाश करने के लिये एक अद्वितीय वीर हैं तथा अनिवार्य वीर्य से उत्पन्न होने वाली महा शक्ति को धारण करने वाले हैं। इसीलिये हे अजित नाथ जिनेन्द्र देव ! मैं आपको वार वार नमस्कार करता हूं ।

ब्रह्मादिदेवा हरलोकनाथा, इन्द्राः सुरा मानवभूपभूपाः ।
एकेन कामेन पराजितास्ते, दग्धस्त्वया सोप्यजितेश धीर ! ॥२॥

अर्थ—हे धीर वीर अजितनाथ स्वामिन् ! ब्रह्मादिक देव, महादेव, लोकपाल, इन्द्र, देव, मनुष्य और अनेक राजा आदि संसार के सब देव और मनुष्य एक कामदेव से पराजित हो चुके हैं।

हे नाथ ! इस संसार में उस कामदेव को केवल आप ने ही दग्ध किया है ।

कर्माष्टकस्य प्रकृतिः समस्ता, खेदैर्विना नाथ ! त्वया निरस्ता।
जगद्विजेतोजितनाथदेव ! त्वं कस्य वंद्यो न मतोसि लोके ॥३॥

अर्थ—हे देव ! हे अजितनाथ भगवन् ! आप ने विना किसी परिश्रम वा खेद के आठों कर्मों की समस्त प्रकृतियों का नाश

कर दिया है। इसलिये ही हे प्रभो! आप जगत् को जीतने वाले कहलाते हैं। हे नाथ! ऐसे आपको इस संसार में कौन वंदना नहीं करता और आप को कौन नहीं मानता अर्थात् सभी वंदना करते हैं और सभी मानते हैं।

क्षुधापिपासामदमोहमायाक्रोधादिदोषं प्रणिहत्य शीघ्रम्।
श्रीकेवलं प्राप स विश्वभानुः, प्रगाढमिथ्यात्वतमःप्रहन्ता॥४॥

अर्थ—हे भगवन्! आप मिथ्यात्व रूपी गाढ़ अंधकार को नाश करने वाले हैं और संसार के समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने के लिये सूर्य के समान हैं, हे नाथ! इसीलिये आप ने भूख, प्यास, मद, मोह, माया और क्रोधादि समस्त दोषों को शीघ्र ही नाश कर समवसरण की लक्ष्मी से सुशोभित केवलज्ञान प्राप्त किया है।

लोकेश्वरो लोकजयी जिनेशस्त्वद्वीर्यमव्याहतमस्ति लोके।
अजेयशक्तिश्च यतोसि देवस्त्वं विश्वजेता गतमत्रगर्वः॥५॥

अर्थ—हे प्रभो! आप तीनों लोकों के स्वामी हैं, तीनों लोकों को जीतने वाले हैं और कर्मरूपी प्रबल शत्रुओं को जीतने वाले हैं। हे स्वामिन्! इस संसार में आपकी शक्ति अव्याहत है। इसीलिये हे देव! आप अजेय शक्ति को धारण करने वाले और समस्त संसार को जीतने वाले कहलाते हैं। हे प्रभो! इतना होने पर भी आप सब प्रकार के अभिमान से रहित हैं।

लोकत्रयं येन जितं समस्तं, लोकोत्तरेतोपि चकार राज्यम्।
दिव्यं प्रपूज्यं जगदेकवीरं, त्रिलोकभूपं त्वजितं नमामि॥६॥

अर्थ—हे प्रभो ! आप ने ये तीनों समस्त लोक जीत लिये हैं और इसीलिये आप ने लोक शिखरपर जाकर अपना राज्य स्थापन किया है। हे देव ! आप दिव्य हैं, अत्यन्त पूज्य हैं, संसार में एक अद्वितीय वीर हैं और इसीलिये तीनों लोकों के नायक वा नाथ कहलाते हैं। हे अजितनाथ ! ऐसे आप को मैं नमस्कार करता हूं।

देवेन्द्रनागेन्द्रसुरासुरैश्च, प्रचण्डदोर्दण्डनरेश्वराद्यैः।
यो नो जितः क्वापि कदापि लोके, जिनो जितः पातु यथार्थनाम॥७

अर्थ—हे भगवान् अजितनाथ स्वामिन् ! आप इस संसार में न तो कभी देवेन्द्र से जीते गए हैं, न नागेन्द्र से जीते गए हैं, न किसी देव से जीते गए हैं, न किसी असुर से जीते गए हैं तथा प्रचंड भुजाओं को धारण करने वाले बड़े बड़े राजा लोगों से भी आप कभी नहीं जीते गए हैं। हे देव इसीलिये आप का अजित यह नाम सार्थक है। हे नाथ ! ऐसे आप मेरी सदा रक्षा करें।

सम्भ्रान्तमेकान्तमतं समूलं, अपाचकारात्र जिनो जिनेशः।
स्याद्वादमुद्रानयसप्तभंग्या, स ज्ञानभानुश्च चराचरज्ञः॥८॥

अर्थ—हे प्रभो ! आप जिन हैं, जिनेश हैं ज्ञान के सूर्य हैं और चराचर सब के ज्ञाता हैं। इसीलिये आप ने स्याद्वाद-मुद्रा नय और सप्तभंगी के द्वारा संशयवादी और एकांतवादी समस्त मतों को समूल नाश कर दिया है।

एकान्तदृष्ट्या न हि निश्चयोऽस्ति, ह्यनेकधर्मात्मकवस्तुनो हि।
विधेर्निषेधात्तदनेकधर्माः, प्रत्यक्षसिद्धा जिन! सप्तभंग्या॥९॥

अर्थ—इस संसार के समस्त पदार्थ अनेक धर्मात्मक हैं। किसी भी एकांतदृष्टि से उन सब का निश्चय नहीं हो सकता। इसीलिये

सप्तभंगी के द्वारा विधि और निषेध पूर्वक उन समस्त पदार्थों के अनेक धर्म प्रत्यक्ष सिद्ध हो जाते है।

क्रिया कथं स्यादिह नित्यमर्थे, प्रोक्तोप्यनित्ये न हि बंधमोक्षः।
एकान्ततो वस्तु भवेच्च शून्यं, स्याद्वादविद्यापतिनाजितेन॥१०॥

अर्थ—जो पदार्थ नित्य हैं उनमें किसी भी प्रकार की क्रिया भला कैसे हो सकती है? तथा यदि पदार्थों को अनित्य मान लिया जाय तो बंध वा मोक्ष की व्यवस्था नहीं बन सकती। इसलिये कहना चाहिए। किसी भी एकांत पक्ष से प्रत्येक पदार्थ का स्वरूप शून्यरूप हो जाता है। यह सब कथन स्याद्वाद विद्या के स्वामी भगवान् अजितनाथ ने निरूपण किया है।

तुभ्यं नमः कर्मविनाशकाय, तुभ्यं नमो दुर्मदभंजकाय।
तुभ्यं नमो मारगजेद्रजेत्रे, तुभ्यं नमो धीमनजेयशक्ते!॥११॥

अर्थ—हे नाथ! आप कर्मों को नाश करने वाले हैं, इसलिये आप को नमस्कार हो। आप दुर्मदको नाश करने वाले हैं, इसलिये आपको नमस्कार करता हूँ। आप काम देव रूपी हाथी को जीतने वाले हैं, इसलिये आप को नमस्कार हो। हे धीमन्! हे अजेय शक्ति को धारण करने वाले अजित नाथ भगवन्! आप को वार वार नमस्कार हो।

भगवान् शम्भवनाथ की स्तुति

श्रीशंभवस्त्वं भवदुःखहारी, श्रीशम्भवस्त्वं शिवसौख्यकारी।
मांगल्यलोकोत्तमसाधुरूपः, नाथोऽप्यसि त्वं शरणागतस्य ॥१॥

अर्थ—हे नाथ भगवन् शंभवनाथ स्वामिन्! आप संसार के समस्त दुःखों को नाश करने वाले हैं, मोक्ष सुख को देने वाले हैं, आपकी शरण में आये हुए जीवों के आप नाथ हैं, इसके सिवाय आप मंगल रूप हैं, लोकोत्तम हैं तथा साधुस्वरूप हैं।

सम्यक् प्रकारेण भवस्य बीजं कर्मप्रबंधं जटिलं महान्तम्।
दुःखप्रदं यस्तपसा निहत्य, प्राप्तं शिवं शंभवनाथमीडे ॥२॥

अर्थ—हे प्रभो! जीवों के साथ लगा हुआ यह कर्मों का समूह अत्यन्त जटिल है, अत्यंत विशाल है, अनंत दुःखों को देने वाला है और जन्म मरण रूप संसार का कारण है। हे शंभवनाथ स्वामिन्! ऐसे इस कर्म के समूह को आप ने अपने तपश्चरण से अच्छी तरह समूल नाश किया है और मोक्ष पद प्राप्त किया है। हे नाथ! ऐसे आप को मैं नमस्कार करता हूँ।

स्वर्गापवर्गस्य सुखस्य दाता, भव्यस्य जन्मान्तकदुःखहर्ता।
आशानदीशोपणतप्तभानुः, श्रीशंभवः पातु शिवस्य कर्ता ॥३॥

अर्थ—हे शंभवनाथ भगवन्! आप स्वर्ग मोक्ष के सुख देने वाले हैं, भव्य जीवों के जन्म-मरण रूप दुःखों को दूर करने वाले

हैं, आशा रूपी नदी को सुखाने के लिये तप्तायमान सूर्य के समान हैं और कल्याण के कर्त्ता हैं, ऐसे शंभवनाथ स्वामी मेरी रक्षा करें।

निंद्यां निकृष्टां नरकादिरूपां, घोरामसह्यां भवसंततिं ताम्।
दुःखप्रदां यः प्रणिहत्य शीघ्रं,जगाम मोक्षं जिन! शंभवेशः! ॥४॥

अर्थ—हे जिन! हे शंभवनाथ स्वामिन यह संसार की परम्परा जन्म-मरण रूप संतति अत्यंत निन्द्य है, निकृष्ट है, नरकादि रूप महाभयानक है, घोर है, असह्य है और अनेक दुःख देने वाली है, ऐसी इस जन्म-मरण रूप संसार परंपरा को नाश कर आप ने मोक्ष सुख प्राप्त किया है।

संसारदावानलदुःखतप्तं, दीनातिदीनं करुणासुपात्रम्।
हे नाथ! धीमन्! करुणानिधान! कृत्वा कृपां मां परिरक्ष रक्ष ।५।

अर्थ—हे धीमन्! हे करुणानिधान! हे नाथ! मैं इस संसार रूपी दावानल के दुःख से अत्यंत संतप्त हो रहा हूँ। इस के सिवाय मैं दीन से भी अत्यंत दीन हूँ और करुणा का उत्तमपात्र हूँ। हे नाथ! इसीलिये आप कृपा कर मेरी रक्षा कीजिये और चारों ओर से रक्षा कीजिये।

यस्त्वां विजानाति स एव धन्यः, संसारकूपारतटं गतोऽसौ।
श्रेयस्करं शास्वतमात्मसौख्यं, त्वद्दर्शनात्क्रीडति तत्कराब्जे ।६।

अर्थ—हे प्रभो! जो पुरुष आप को जान लेता है, संसार में वही धन्य माना जाता है तथा वही पुरुष इस संसाररूपी महासागर के किनारे पर जा पहुँचता है। हे नाथ! आप के दर्शन

करने मात्र से सदा कल्याण करने वाला और सदा काल रहने वाला आत्म-सुख उस दर्शन करने वाले पुरुष के कर-कमलों में सदा क्रीडा करता रहता है।

हे नाथ ! यस्त्वां जपति स्वभावाद्भवोद्भवं जन्मजरादिदुःखम् ।
नश्यत्यवश्यं भवतः प्रसादात् ,तस्येह सौख्यं भवति प्रशस्यम् ।७।

अर्थ—हे नाथ ! जो पुरुष स्वभाव से ही आप का जप करता है, उस के संसार में उत्पन्न होने वाले जन्म-मरण रूप दुःख अवश्य नष्ट हो जाते हैं। हे प्रभो ! आप के प्रसाद से उस पुरुष को अत्यंत प्रशंसनीय सुख प्राप्त हो जाता है।

हे नाथ ! मिथ्यामतयो जना ये, त्वां द्वेषबुद्धयापि नमन्ति तेषाम् ।
दुःखानि नश्यन्ति दिवोद्भवानि, सुखानि वा यान्ति जिनेन्द्रदेव !८

अर्थ—हे नाथ ! हे जिनेन्द्रदेव ! जो लोग मिथ्या बुद्धि को धारण करने वाले हैं और द्वेष बुद्धि से भी आप को नमस्कार करते हैं उनके समस्त दुःख नष्ट हो जाते हैं तथा स्वर्ग के सुख अपने आप आ जाते हैं।

यस्त्वां हृदि ध्यायति कूटभावात् ,तस्यापि पीडा सहसा प्रयाति ।
हैमोदकं स्पर्शकृतं हि लोके, शैत्यं न कस्येह करोति नाथ ! ॥९

अर्थ—हे नाथ ! जो पुरुष किसी छल-कपट से भी अपने हृदय में आप का ध्यान करता है, उस की समस्त पीड़ाएँ बहुत शीघ्र नष्ट हो जाती हैं। सो ठीक ही है क्योंकि इस लोक में स्पर्श किया हुआ बरफ का जल भला किस को शीतल नहीं कर देता है अर्थात् सब को शीतल कर ही देता है।

अज्ञानतस्त्वां भुवि संश्रिता ये, घोरापदा मानसविह्वलाश्च ।
सापच्च तेषां खलु नश्यतीह, जिन ! प्रभो ! ते महिमा विशाला ॥'

अर्थ—हे जिन ! हे प्रभो ! जिन पर घोर आपत्ति आ रही है और जो अपने मन में अत्यंत विह्वल हो रहे हैं, ऐसे पुरुष यदि अपनी अजानकारी से भी आप के आश्रय आ जायं तो उन की वह आपत्ति अवश्य नष्ट हो जाती है। हे नाथ ! इस ससार मे आप की महिमा वडी ही विशाल है।

त्वामेव तस्माच्छरणागतं मां, भवस्य दुःखादतिपीडितं च ।
स्वामिन् ! सुरक्षेह कृपां विधाय, छिंद्ध्याशु कर्माश्रितबंधजालम् ११

अर्थ—हे स्वामिन् ! मैं संसार के दुःखों से अत्यंत पीड़ित हूँ और इसीलिये आप की शरण मे आया हूँ। हे नाथ ! कृपा कर मेरी रक्षा कीजिये और कर्मों के सम्बन्ध से बंधने वाले बंध के जाल का शीघ्र ही नाश कर दीजिये।

तुभ्यं नमः संसृतिदुःखहर्त्रे, तुभ्यं नमःवाञ्छितसौख्यकर्त्रे ।
तुभ्यं नमः शंभवनाथ ! भर्त्रे, तुभ्यं नमो ज्ञानकलाविधात्रे ।१२।'

अर्थ—हे शंभवनाथ ! आप संसार के समस्त दुःखो को नाश करने वाले हैं इसलिये आप को नमस्कार है। आप मन-वांछित सुखों को देने वाले हैं, इसलिये आप को नमस्कार है। आप सब के स्वामी हैं, इसलिये आपको नमस्कार है। आप ज्ञान की समस्त कलाओं को प्रगट करने वाले विधाता हैं, इसलिये आप को बार बार नमस्कार हो।

भगवान् अभिनन्दन नाथ की स्तुति

आनन्दवृन्दं सुखसिद्धिहेतु, हर्षं प्रहर्षं भुवि मंगलं च ।
येन प्रदत्तं निरपेक्षवृत्या, ध्यायामि वा नौम्यभिनन्दनं तम् ॥१॥

अर्थ—जिन अभिनन्दन नाथ भगवान् ने इस संसार में आनन्द के समूह, सुख की सिद्धि के कारण, हर्ष, महाहर्ष और मंगल आदि सुख देने वाले समस्त पदार्थ बिना किसी अपेक्षा के प्रदान किए हैं; ऐसे उन अभिनन्दन स्वामी को मैं नमस्कार करता हूँ तथा उन का ध्यान करता हूँ ।

ध्यायामि गायामि जपामि नित्यं, स्तवीमि नौमि प्रयजामि भक्त्या ।
वंदामि यामि प्रणमामि भावात्, देवाधिदेवं ह्यभिनन्दनं तम् ॥२॥

अर्थ—भगवान् अभिनन्दन स्वामी देवाधिदेव हैं, इसीलिए मैं अपने उत्तम भावों से बड़ी भक्ति पूर्वक उन का ध्यान करता हूँ, उन के गुणों का गान करता हूँ, नित्य ही उन का जप करता हूँ स्तुति करता हूँ, उन को नमस्कार करता हूँ, उन की पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ, उन की शरण में आता हूँ, और उन को प्रणाम करता हूँ ।

गोशीर्षपंकोद्भवलेपनेन, पादद्वयं ते जिन ! लेपयामि[1] ।
संसारदाहस्य कुरुष्व शांतिं, शान्तेर्विधाता जगति त्वमेव ॥३॥

१—'पादद्वयं हे जिन ! तेऽर्चयामि' इत्यपि पाठः ।

अर्थ—हे भगवन्! हे जिन! घिसे हुए चन्दन के लेप से मैं आप के दोनों चरण-कमलों की (लेप) पूजा करता हूं। हे नाथ! आप संसार के दुःखों से होने वाले दाह को शांत कीजिए, क्योंकि इस संसार में शांत देने वाले एक आप ही हैं।

अल्पा सुबुद्धिर्ननु शक्तिरल्पा, प्रसाधनं मे भवतो न योग्यम्।
कार्यं किमत्रेति न वेद्मि देव! नमामि पुष्पांजलिमित्ततोऽहम्॥४

अर्थ—हे देव! यद्यपि मेरी बुद्धि सुबुद्धि है तथापि वह बहुत थोड़ी है, तथा मेरी शक्ति भी बहुत ही थोड़ी है और मेरे साधन भी आप की पूजा वा स्तुति आदि के योग्य नहीं हैं। इसलिये मैं यह भी नहीं समझ सकता हूँ कि मैं अब क्या करूं? इसीलिये हे नाथ! मैं यह पुष्पांजलि रखकर केवल आप को नमस्कार करता हूं।

मंदारकुंदादितरुप्रसूनं त्वत्पादपद्मोपरि ये क्षिपन्ति।
तेषां हि पापं प्रगलत्यवश्यं, सुधाझरिण्यास्तपनं यथेह॥५॥

अर्थ—हे भगवन्! जिस प्रकार इस संसार में अमृत के झरने से संताप नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार जो पुरुष आप के चरण कमलों पर मंदार-कुंद आदि वृक्षों के पुष्प चढ़ाते हैं उनके पाप अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं।

अपारसौगंध्यनिधानभूत-त्वत्पादपद्मोपरिदत्तपुष्पम्।
विराजते शुभ्रमतिप्रफुल्लं, त्वत्संगमात्कः शुचितां न याति॥६॥

अर्थ—हे नाथ! आपके चरण-कमल अत्यन्त सुगंधि के खजाने हैं, उन के ऊपर रक्खे हुए सफेद और अत्यंत खिले हुए पुष्प बहुत ही अच्छे शोभायमान होते हैं। सो ठीक ही है, क्योंकि आपके

समागम से कौन पवित्र और स्वच्छ नहीं हो जाता है अर्थात् आप के समागम से सभी जीव पवित्र और शुद्ध हो जाते हैं।

त्वद्भक्तिभावाच्च यजन्ति ये त्वां नश्यन्ति तेषां भुवि पातकानि
घोराणि दत्तानि कुकर्मणात्र, त्वत्पादपूजा न फलन्ति किंवा ॥७॥

अर्थ--हे प्रभो! जो पुरुष आप में अत्यंत भक्ति करते हुए आपकी पूजा करते हैं, इस संसार में अशुभ कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले उनके समस्त घोर पाप भी अवश्य नष्ट हो जाते है। सो ठीक हो है, क्योंकि आप के चरण-कमल की पूजा से इस संसार में क्या क्या फल प्राप्त नहीं होते हैं अर्थात् सब प्रकार के उत्तम फल प्राप्त हो जाते हैं।

कोटिप्रजन्मानुगतं हि पापं पूजा, हि ते नाथ! हरत्यवश्यम्।
सावद्यकर्माश्रित लेशमात्रं, पापं न सा किं हरतीह नाथ ॥८॥

अर्थ—हे भगवन्! आप की पूजा करने से करोड़ों जन्मों से चले आये पाप भी अवश्य नष्ट हो जाते हैं। फिर भला हे नाथ उसी पूजा से पूजा के कार्य में होने वाला थोड़ा सा आरंभ जनित लेश मात्र पाप क्या नष्ट नहीं हो सकता? अवश्य नष्ट हो जाता है। भावार्थ—जिस पूजा से करोड़ो जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं, उसी पूजा से पूजा में होने वाले आरंभ का थोड़ा सा पाप भी अवश्य नष्ट हो जाता है।

मिथ्यात्ववाताहतवाहितस्य, त्वद्भक्तिनम्रस्य जनस्य दुःखम्।
किं किं न सद्यो भुवि नश्यतीह, वाताहतस्येव तृणांकुरस्य ॥९॥

अर्थ—हे नाथ! जो पुरुष मिथ्यात्व रूपी वायु से ताडित हुआ उसी के प्रवाह में वह रहा है परंतु आप की भक्ति में सदा नम्र

रहता है ऐसे पुरुष के ऐसे कौन-कौन से दुःख हैं जो इस संसार में शीघ्र ही नष्ट नहीं हो जाते अर्थात् आप की भक्ति से ही सब दुःख नष्ट हो जाते हैं, जैसे वायु के झकोरे से मिलाई हुई घास के सब दोष दूर हो जाते हैं।

ध्यानेन ते नाथ! मनोरथं मे, त्वद्भक्तिनिष्ठागतसाम्यलिप्सोः।
फलत्यवश्यं न हि चित्रमत्र, केकेव मेघध्वनिना जिनेश ॥१०॥

अर्थ—जिस प्रकार मेघ के गर्जने से मयूर की वाणी अपने आप होने लगती है, उसी प्रकार आप की भक्ति के श्रद्धान से प्राप्त होने वाली समता की इच्छा करने वाला मैं आप का ध्यान करता हूं। इसलिये हे नाथ आप के ध्यान से मेरे समस्त मनोरथ अवश्य ही फलीभूत होंगे, इस में आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

त्वद्दर्शनं नाथ निमेषमात्रं, सद्यो ददात्यत्र धनादिवृद्धिम्।
त्वत्पादपूजा तु ददात्यवश्यं स्वर्गापवर्गं, च मनोरथं च ॥११॥

अर्थ—अथवा हे भगवन्! क्षणमात्र भी किये हुए आप के दर्शन इस संसार में धनादि की वृद्धि का शीघ्र ही दे डालते हैं। तथा आप के चरण-कमलों की की हुई पूजा सब प्रकार के मनोरथों को तथा स्वर्ग और मोक्ष को अवश्य दे डालती है।

त्वत्पादपीयूषरसं पिबन्तः, प्रयान्ति भक्ताः अजरामरत्वम्
पादामृतं ये भुवि पाश्रयन्ति, त्वद्रूपतां तां यजनच्छलेन ॥१२॥

अर्थ—जो भक्त पुरुष आप के चरण कमल के अमृत रस का पान करते हैं वे अवश्य ही अजर अमर पद को प्राप्त हो जाते हैं। तथा जो पुरुष आप की पूजा करने के बहाने से इस संसार में

आप के चरण-कमल रूपी अमृत का आश्रय लेते हैं वे आप के ही समान अरहंत अवस्था को प्राप्त हो जाते है।

तुभ्यं नमोनंतसुखाश्रिताय, तुभ्यं नमोनन्तगुणार्णवाय।
तुभ्यं नमोनन्तदयापराय, नमोस्तु तुभ्यं ह्यभिनन्दनाय ॥१३॥

अर्थ—हे अभिनन्दन भगवन्! आप अनन्त सुख के आश्रय हैं इस लिये आप को नमस्कार है। आप अनन्त गुणो के समुद्र हैं इस लिये आप को नमस्कार है। आप अनन्त दया को धारण करने वाले हैं इस लिये आप को नमस्कार है। हे अभिनन्दन नाथ! आप को वार वार नमस्कार है।

भगवान् सुमतिनाथ की स्तुति ।

जयतु सुमतिनाथः शुद्धबुद्धिः प्रबुद्धः,
वितरतु जगतां सः शुद्धतत्त्वस्वरूपम् ।
विगततपनभावः शान्तिपीयूषनाथः,
जगति तिमिरहंता केवलज्ञानभानुः ॥ १ ॥

अर्थ—भगवान् सुमतिनाथ स्वामी शुद्ध बुद्धि को धारण करने वाले हैं, अनन्त ज्ञानी हैं, क्रोधादि उग्र भावों से सदा अलग हैं, शान्ति रूपी अमृत के स्वामी हैं, मिथ्यात्व रूपी अन्धकार को नाश करने वाले हैं और केवलज्ञान के द्वारा सूर्य के समान हैं। ऐसे भगवान् सुमतिनाथ स्वामी सदा जयशील हों तथा वे ही भगवान सुमतिनाथ स्वामी संसारी जीवों के लिये आत्मा के शुद्ध स्वरूप को प्रदान करें।

परमसमयभावे साम्यपीयूषकुंजे,
विगलितमदमायाक्रोधकामादिभावे ।
जननमरणदुःखात्सर्वदात्यंतदूरे,
ददतु सुमतिनाथः स्वात्मबोधे समाधिम् ॥ २ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! यह अपनी आत्मा का शुद्ध ज्ञान परम शुद्ध स्वरूप है, समता रूपी अमृत का कुंज है, मद-माया क्रोध-काम आदि अशुभ परिणामों का नाश करने वाला है और सदा

काल जन्म मरण के दुःखों से अत्यन्त दूर रहने वाला है; ऐसे शुद्ध आत्म स्वरूप में वे भगवान् सुमतिनाथ स्वामी मुझे समाधि प्रदान करें।

व्रतपरमनिधीनां दायको लोकनाथः,
शिवसुखपथिकानां दत्तहस्तावलम्बः।
त्वमसि तदपि देवो वीतरागी विरागी,
जयतु सुमतिनाथः सर्वलोकैकबंधुः ॥ ३ ॥

अर्थ—हे सुमतिनाथ भगवन्! आप व्रतो की परम निधियों को देने वाले हैं, तीन लोक के स्वामी हैं, मोक्ष मार्ग के सुखी पथिकों को हस्तावलम्बन देने वाले हैं तथापि हे देव! आप वीतराग वा राग-द्वेष रहित हैं तथा इतना होने पर भी समस्त लोको के एक अद्वितीय बन्धु हैं, ऐसे हे सुमतिनाथ भगवन्! आप सदा जयशील हो।

स्वसमयरसमग्नस्त्यक्तसाम्राज्यभोगः,
व्रतसमितितपोभिर्ध्वस्तमोहांधकारः।
समवसृतिसभायां दिव्यसिंहासने यः,
त्रिभुवनपतिपूज्यश्चामरैर्वीज्यमानः ॥ ४ ॥

अर्थ—वे भगवान् सुमतिनाथ स्वामी अपने शुद्ध आत्मा के रस में मग्न हैं, उन्हों ने समस्त साम्राज्य और भोगोपभोग आदि का सर्वथा त्याग कर दिया है, व्रत-समिति और तपश्चरण के द्वारा समस्त मोह रूपी अन्धकार का नाश कर दिया है, वे भगवान् समवसरण सभा मे दिव्य सिंहासन पर विराजमान हैं; तीनो लोकों के द्वारा पूज्य हैं और चौसठ चमर उन पर ढुलाये जाते हैं।

निहतसकलदोषः प्राप्तकैवल्यसूर्यः,
निरुपमशिवमार्गं देशयन् दिव्यवाचा ।
जगति सकलजीवान् दिव्यबोधं ददानः,
जय जय सुमतीशोऽधीश्वराणामधीशः ॥ ५ ॥

अर्थ—हे भगवन सुमतिनाथ ! आप ने समस्त दोषों का नाश कर दिया है और केवलज्ञान रूपी सूर्य प्राप्त कर लिया है. आप अपनी दिव्य ध्वनि के द्वारा उपमा रहित मोक्ष मार्ग का उपदेश देते हैं, इस संसार में समस्त जीवों को दिव्य ज्ञान देने वाले हैं, इसके सिवाय आप अधीश्वरों के भी अधीश्वर हैं: ऐसे हे सुमतिनाथ ! आप की सदा जय हो जय हो ।

दशविधशुभधर्मं धारयन् स्वच्छवृत्तिः,
विशदसहजतेजो भासयन् दिव्यभानुः ।
अतिगलितविकल्पः छेदयन् द्वन्द्वभावं,
सहजसुमतिलीनः स्वात्मनि स्थैर्यरूपः ॥ ६ ॥

अर्थ—वे भगवान् सुमतिनाथ स्वामी दश प्रकार के शुभ धर्म को धारण करने वाले हैं, निर्मल वृत्ति को धारण करने वाले हैं, स्वाभाविक महा तेज से देदीप्यमान हैं, अद्भुत दिव्य सूर्य के समान हैं, समस्त संकल्प-विकल्पों से रहित हैं, द्वन्द्वरूप समस्त परिणामों को नाश करने वाले हैं, स्वाभाविक सम्यग्ज्ञान में लीन हैं और अपने शुद्ध आत्मा में स्थिर हैं ।

अविचलितसुवृत्तिर्ज्योतिरुद्योतरूपः,
निजबृहदुपयोगे गाढलीनो विशुद्धे ।

परपरणतिहीनोल्हादको निर्विकल्पः,
जयतु सुमतिदेवोऽनादिसंसारभेत्ता ॥ ७ ॥

अर्थ—भगवान् सुमतिनाथ स्वामी की शुद्ध वृत्ति सदा निश्चल रहती है, अपनी केवल ज्ञानरूपी ज्योति से वे सदा उद्योत रूप रहते हैं, अत्यन्त विशुद्ध ऐसे अपने ज्ञानदर्शन रूप अनंत उपयोग मे वे सदा गाढ़ लीन रहते हैं, वे पर-परणति से सदा रहित हैं, समस्त जीवो को सुख देने वाले हैं, संकल्प-विकल्पो से सदा रहित हैं और अनादि संसार को नाश करने वाले हैं; ऐसे भगवान् सुमतिनाथ की सदा जय हो।

सहजपरमगाढे शुद्धसम्यक्त्वके यः,
विचरति निजभूत्या क्रीडयन् स्वात्मसौख्ये ।
अविरतविजिताक्षश्चेतसो रुद्धवृत्तिः,
जयतु सुमतिदेवो ध्यानलीनः सुयोगी ॥ ८ ॥

अर्थ—वे भगवान् सुमतिनाथ स्वामी अपनी आत्म-विभूति के साथ स्वभाव से होने वाले शुद्ध परम गाढ़ सम्यग्दर्शन मे सदा विहार करते रहते हैं, आत्म-सुख मे सदा क्रीड़ा करते रहते हैं, अपनी इन्द्रियों को सदा जीतते हैं, मन की वृत्ति को सदा रोकते हैं, ध्यान मे सदा लीन रहते हैं और परम योग को धारण करते हैं; ऐसे उन सुमतिनाथ स्वामी की सदा जय हो।

जयति जयति नित्यं वीतरागं महेशं,
भजति भजति देवाधीशमानन्दकन्दम् ।
स्मरति सुमतिदेवं तीर्थनाथं जिनेशं,
जगति स लभतेऽसौ सारसौख्यं विमुक्तेः ॥ ९ ॥

अर्थ—जो पुरुष भगवान् वीतराग सुमतिनाथ महादेव का सदाकाल जप करता है, देवों के स्वामी और आनंदकंद भगवान् सुमतिनाथ की पूजा करता है वा उन की सेवा करता है अथवा तीर्थंकर जिनेन्द्रदेव भगवान् सुमतिनाथ का जो स्मरण करता है; वह पुरुष इस संसार मे मोक्ष के सारभूत परम सुख को प्राप्त करता है।

विनिहतसकलाशो निस्पृहत्वं दधानः,
जगति स कृतकृत्यः कर्मभेदी स्वतंत्रः।
मनुजसुरसुरेशैः पूज्यपादो महात्मा,
विदधतु सुमतिं वो देवदेवो जिनेन्द्रः॥ १० ॥

अर्थ—उन भगवान सुमतिनाथ ने अपनी समस्त आशाएं नष्ट कर दी हैं, वे निस्पृह वृत्ति को धारण करते हैं, इस संसार मे कृतकृत्य हैं, कर्मों को नाश करने वाले हैं, स्वतन्त्र हैं, मनुष्य-देव-इन्द्र आदि सब उन के चरण-कमलो की पूजा करते हैं, वे भगवान् महात्मा हैं, देवाधिदेव है और जिनेन्द्रदेव हैं, ऐसे भगवान् सुमतिनाथ स्वामी आप सब लोगा को सुबुद्धि देवें।

भगवान् पद्मप्रभु की स्तुति

पद्मस्य चिह्नेन विराजमानं, पद्मप्रभालिंगितचारुमूर्तिम् ।
स्वर्णाभपद्मोपरिसंस्थितं तं, परमेश्वरं पद्मजिनं नमामि ॥१॥

अर्थ - जो पद्मप्रभु भगवान् कमल के चिन्ह से सुशोभित हैं, जिन की सुन्दर मूर्ति वा सुन्दर शरीर कमल की मनोहर प्रभा से सुशोभित है, जो सुवर्ण के समान सुशोभित होने वाले कमल पर विराजमान हैं, जो अनन्त चतुष्टय रूप अन्तरंग लक्ष्मी के तथा समवसरणादिक बहिरंग लक्ष्मी के स्वामी हैं; ऐसे भगवान् पद्मप्रभु स्वामी को मैं नमस्कार करता हूँ ।

अनंतवीर्योद्भवदिव्यपद्मामनन्तविज्ञानमयीं सुपद्माम् ।
अनंतदृक्सौख्यधरां सुपद्मां, पद्मेश्वरः पद्मजिनो बिभर्ति ।२।

अर्थ—अनन्त लक्ष्मी के स्वामी भगवान् पद्मप्रभु जिनेन्द्र देव अनन्त वीर्य से प्रगट होने वाली अनन्त विज्ञान रूपी अन्तरंग लक्ष्मी को धारण करते हैं, तथा अनन्त दर्शन और अनन्त सुख-मय अन्तरंग लक्ष्मी को धारण करते हैं; इस प्रकार वे भगवान् अनंत चतुष्टय रूप अन्तरंग लक्ष्मी को धारण करते हैं ।

साम्राज्यपद्मां वरभोगपद्मां, त्यक्त्वा सुधीः पद्मजिनो दयालुः ।
दैगम्बरीं सोत्र चकार दीक्षां, मोक्षस्य पद्मां समुपासनाय ॥३॥

अर्थ—अत्यन्त दयालु और अत्यन्त बुद्धिमान् ऐसे भगवान् पद्मप्रभु जिनेन्द्रदेव ने साम्राज्य लक्ष्मी का तथा उत्तम भोगोपभोग लक्ष्मी का तो त्याग कर दिया और मोक्ष की लक्ष्मी की उपासना करने के लिये दिगम्बरी दीक्षा धारण की।

ध्यानैकलीनः सुमनोजितात्मा, निर्द्वन्द्वभावं समुपागतो यः।
प्रशांतचित्तो जिनपद्मयोगी, मोक्षस्य पद्मां शिवदां प्रपेदे॥४॥

अर्थ— महायोगी भगवान् पद्मप्रभु देव सदा ध्यान मे लीन रहने वाले हैं, मन की एकाग्रता से आत्मा पर भी विजय प्राप्त करने वाले हैं, सकल्प-विकल्प रहित निर्द्वन्द्व भाव को प्राप्त हुए हैं, और सदा शान्त आत्मा को धारण करने वाले हैं इसी लिये वे भगवान् मोक्ष देने वाली मोक्ष रूपी लक्ष्मी को प्राप्त हुए हैं।

देवैः कृता पद्मचयस्य वृष्टिः, विभाति पद्मस्य जिनस्य तस्य।
तारान्वितः पुष्पछलेन साक्षात्, समागतः पद्मजिनेशचन्द्रः॥५॥

अर्थ—हे पद्मप्रभु! देवो ने आप के ऊपर जो कमलों के समूह की वर्षा की है वह बडी ही अच्छी शोभायमान होती है और ऐसी अच्छी शोभायमान होती है मानो उन पुष्पो के बहाने से तारा-नक्षत्र सहित साक्षात् चन्द्रमा ही आ गया हो।

छत्रत्रयाणां मिषतो हि भक्त्या, त्रैलोक्यपद्मा किमु सेवते यम्।
पद्मेश्वरं सार्थकनामधेयं, मत्वेति तं पद्मजिनं नमामि॥६॥

अर्थ—हे भगवन्! आप अन्तरंग वहिरंग लक्ष्मी के स्वामी है इसी लिये 'पद्मप्रभु' यह नाम आप का सार्थक है। यही समझ कर मानो तीनो लोको की लक्ष्मी अपनी भक्ति से आप के मस्तक

पर लगे हुए तीनों छत्रों के बहाने से आप की सेवा कर रही है?
हे पद्मप्रभु ! ऐसे आप को मैं नमस्कार करता हूँ।

ये भक्तिभावाज्जिनपद्मदेवं, सुगन्धिपद्मैः प्रयजंति नित्यम्।
साम्राज्यपद्मामिह ते लभन्ते, स्वर्गापवर्गं क्रमतो भजन्ते ॥७॥

अर्थ—हे जिनेन्द्र देव ! जो पुरुष अपने भक्ति भावों से सुगंधित कमल चढ़ा कर भगवान् पद्मप्रभु देव की सदा पूजा करते हैं वे इस संसार में साम्राज्य लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं तथा अनुक्रम से स्वर्ग-मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

त्वत्पादपद्मां प्रविलोक्य पद्मा, स्वां तुच्छरूपामिह मन्यमाना।
कासारवासं गुरुलज्जयेव, चकार सा किं ह्यधुना न देव ! ॥८॥

अर्थ—हे देव ! यह प्रसिद्ध लक्ष्मी आप के चरण-कमलों की लक्ष्मी को देख कर अपने को बहुत ही तुच्छ समझने लगी है। तथा इसी लिये बड़ी भारी लज्जा से लज्जित होकर क्या अब उस ने सरोवर में अपना निवास नहीं बना लिया है? अवश्य बना लिया है।

भावार्थ—वह आप के चरण-कमलों की लक्ष्मी से लज्जित होकर ही सरोवर में छिप कर रहने लगी है।

पद्मेश्वरैः पूजितपादपद्मः, पद्मेश्वरोऽसौ विदधातु पद्माम्।
त्वद्भक्तिनम्रानिह भव्यपद्मान्, तां शाश्वतीं वै भुवनेशवंद्यः ॥९॥

अर्थ—हे पद्मप्रभ भगवन् ! आप तीनों लोकों के द्वारा वंदनीय हैं और अन्तरंग-बहिरंग लक्ष्मी के स्वामी हैं, इसी लिये इन्द्र-चक्रवर्ती आदि की लक्ष्मी को धारण करने वाले महापुरुष

भी आप के चरण-कमलों की पूजा करते हैं। हे प्रभो! इस संसार मे आप की भक्ति मे नम्र हुए भव्यरूपी कमलों को आप सदा उसी रूप से रहने वाली मोक्ष रूपी लक्ष्मी प्रदान कीजिये।

तुभ्यं नमः पद्मसनाथमूर्ते! तुभ्यं नमः पद्मसुगन्धमूर्ते!।
तुभ्यं नमः पद्ममनोज्ञमूर्ते! तुभ्यं नमः पद्महितैंपिमूर्ते! ॥१०॥

अर्थ—हे देव पद्मप्रभु स्वामिन्! आप के शरीर पर पद्म का चिह्न है इसी लिये आप को नमस्कार हो। आप का शरीर पद्म वा कमल के समान मनोहर है इस लिये आप को नमस्कार हो और हे नाथ! आप का शरीर पद्म वा कमल का हितैंपी सूर्य के समान दैदीप्यमान है इस लिये आप को वार वार नमस्कार हो।

भगवान् सुपार्श्वनाथ की स्तुति

पंचकल्याण-गर्भित

फणावलीमंडितदिव्यदेहः, यः स्वस्तिकांगेन विराजमानः।
निसर्गशुद्धः प्रविधूतपापः, सुपार्श्वनाथो हि शिवं प्रदद्यात् ॥१॥

अर्थ—हे प्रभो ! सुपार्श्वनाथ स्वामिन् ! आप का शरीर सर्प की फणाओं से सुशोभित है, उस पर स्वस्तिक वा सांथिया का चिह्न शोभायमान है, वह स्वभाव से ही शुद्ध है और पापो से सदा रहित है; ऐसे शरीर को धारण करने वाले हे सुपार्श्वनाथ स्वामिन् ! आप हमें मोक्ष प्रदान कीजिये।

त्वदागमात्प्राग्ऋतुमासपूर्व, चकार यक्षः शुभरत्नवृष्टिम्।
श्रीह्र्यादिदेव्यस्तव मातरं हि, तव प्रभावाच्च सिषेविरे ताम् ॥२॥

अर्थ—हे नाथ ! आप के गर्भ-कल्याणक के छह महीने पहिले से ही इस पृथ्वी पर यक्ष ने अनेक शुभ रत्नों की वृष्टि की थी तथा आप के ही प्रभाव से श्री-ह्री आदि देवियां आप की माता की सेवा करती थी।

त्वयि प्रजाते भवतः प्रभावान्निसर्गतो देव ! सुदेवलोके।
शंखादिवाद्यध्वनयो बभूवुः, शक्रासनं तत्सहसा चकंप ॥३॥

अर्थ—हे देव ! आप के जन्म लेते ही देवलोक (स्वर्ग) में आप के प्रभाव से शंख-घण्टा आदि बाजो की ध्वनि अपने आप

होने लगी थी तथा इन्द्र का सिंहासन भी अकस्मात कम्पायमान हो गया था।

ज्ञात्वा च शक्रोवधिलोचनेन, ऐरावणे स्थाप्य जिन सुपार्श्वम्।
मेरुं च गत्वा शुभपांडुपीठे, निवेशयामास महोत्सवेन ॥४॥

अर्थ—उसी समय इन्द्र ने अपने अवधि ज्ञान से भगवान् का जन्म जान लिया और उन सुपार्श्वनाथ भगवान को ऐरावत हाथी पर विराजमान कर सुमेरु पर्वत पर पांडुक वन में पांडुक शिला पर ले जा कर बड़े उत्सव के साथ विराजमान किया।

अष्टोत्तरैस्तैश्च सहस्रकुम्भैर्गंधप्रसूनादिसमर्चितश्च।
क्षीराब्धिदुग्धैः परिपूरितान्तैः, सुपार्श्वदेवं स्नपयन्ति शक्राः॥५॥

अर्थ—तदनतर जिन कलशो में क्षीरसागर का शुद्ध दुग्ध भरा हुआ है तथा गंध पुष्प आदि से जिन की पूजा की गई है, ऐसे एक हजार आठ कलशों से इन्द्रो ने भगवान सुपार्श्वनाथ स्वामी का अभिषेक किया।

नीराजनं चान्त्यविधिं च कृत्वा, ततान नृत्यं मघवा सुभक्त्या।
क्रमात्स साम्राज्यपदं च धृत्वा, बुभोज धीमान् सकलां धरित्रीम्।६

अर्थ—तदनतर इन्द्र ने अंत की नीराजन विधि की और फिर बडी भक्ति से भगवान् के सामने नृत्य किया। इस के कितने ही वर्ष बाद बुद्धिमान् भगवान् ने साम्राज्य पद धारण किया तथा समस्त पृथ्वी का उपभोग किया।

तत्याज ग्रन्थं द्विविधं महात्मा, दधौ प्रव्रज्यां जिनजातरूपाम्।
योगीश्वरोसौ हि सुपार्श्वदेवः, नैराश्यभावं परमं प्रपेदे ॥७॥

अर्थ—समस्त योगियो के स्वामी और महात्मा भगवान् सुपार्श्वनाथ ने वाह्य और आभ्यंतर दोनों प्रकार के परिग्रहों का त्याग कर दिया था, जैनेश्वरी परम दिगम्बर दीक्षा धारण की थी और फिर वे परम वीतराग भाव को प्राप्त हुए थे।

कायस्य वाचो मनसो विशुद्ध्या, घोराणि पापानि सदा त्यजन्तम्।
तीव्रं तपो दुश्चरमाचरन्तं, वन्दे सुपार्श्वं च भवं हरन्तम् ॥८॥

अर्थ—जिन भगवान् सुपार्श्वनाथ स्वामी ने मन-वचन-काय की शुद्धता से घोर पापो का सदा के लिये त्याग कर दिया है तथा जिन्हों ने अत्यन्त कठिन तीव्र तपश्चरण धारण किया है और जो इस जन्म मरण रूप संसार को नाश करने वाले हैं; ऐसे भगवान् सुपार्श्वनाथ की मैं सदा वन्दना करता हूँ।

अताम्रनेत्रो गतकोपभावात्, निर्द्वन्द्वभावो गतग्रन्थसंगात्।
प्रशान्तचित्तो बहुनिस्पृहत्वात्तस्मात्सुपार्श्वो हि प्रमाणयोगी ॥९॥

अर्थ—भगवान् सुपार्श्वनाथ ने क्रोध भावो को सर्वथा नष्ट कर दिया है इसी लिये उन के नेत्र कभी लाल नही होते, उन्हों ने सब प्रकार के परिग्रहों का त्याग कर दिया है इस लिये वे संकल्प विकल्प रहित शुद्ध परिणामो को धारण करते हैं; वे अत्यन्त निस्पृह हैं इसी लिये उनका चित्त सदा शांत रहता है। इन्हीं सब कारणों से वे भगवान् सुपार्श्वनाथ स्वामी प्रमाण-योगी (सब तरह से प्रमाण मानने योग्य योगी) माने जाते हैं।

नासाग्रदृष्टिं विमलां धरन्तं, शान्तं जिताक्षं खलु निष्कषायम्।
ध्यानैकलीनं वरवीतरागं, भजे सुपार्श्वं वरयोगिनाथम् ॥१०॥

अर्थ—भगवान् सुपार्श्वनाथ स्वामी अपनी निर्मल दृष्टि को नासिका के अग्रभाग पर धारण करते हैं, अत्यन्त शांत हैं, इन्द्रियों को दमन करने वाले हैं, कषाय रहित हैं, ध्यान में ही सदा लीन हैं, सर्वोत्तम वीतराग हैं और योगियों के सर्वोत्तम स्वामी हैं; ऐसे भगवान् सुपार्श्वनाथ की मैं पूजा-वन्दना करता हूँ।

तीव्रैस्तपोभिश्च जघान घातिकर्मप्रबन्धं हि सुपार्श्वनाथः।
ज्ञानं स लेभे परमं विशुद्धं, चराचरं तेन विलोकयन् सः ॥११॥

अर्थ—जिनेन्द्र सुपार्श्वनाथ भगवान ने तीव्र तपश्चरण के द्वारा घातिया कर्मों का नाश कर परम विशुद्ध केवलज्ञान प्राप्त किया है और फिर उसी से चराचर समस्त लोक को देखा है।

अशेषकर्माणि जघान योगी, शिवं च लेभे हि निरंजनः सः।
दद्याच्छिवं नो हि सुपार्श्वदेवः, कल्याणकारी सुरराजपूज्यः ।१२।

अर्थ—तदनंतर उन योगिराज भगवान् सुपार्श्वनाथ ने समस्त कर्मों को नाश कर तथा सब तरह से निरंजन वा निर्दोष शुद्ध होकर मोक्ष प्राप्त किया, ऐसे वे सब का कल्याण करने वाले और इन्द्रों के द्वारा पूज्य भगवान् सुपार्श्वनाथ स्वामी तुम लोगों को मोक्ष देवें।

भगवान् चन्द्रप्रभ की स्तुति

(गर्भकल्याण-गर्भित)

चन्द्रोज्ज्वलायां सितचन्द्रपुर्यां, चन्द्राश्मकांतेन विनिर्मितायाम् ।
चन्द्राननायां जितचन्द्रिकायां, सल्लक्ष्मणायां समवातरत्सः ॥१॥

अर्थ—भगवान् चन्द्रप्रभ स्वामी ने चन्द्रमा के समान निर्मल और चन्द्रकांत मणियो से बनी हुई अत्यंत निर्मल चन्द्रपुरी नगरी मे चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख को धारण करने वाली और चन्द्रमा की चांदनी को जीतने वाली महारानी लक्ष्मणा के गर्भ मे अवतार लिया था ।

त्रिंशत्सुपक्षे सितपुण्ययोगात्, शुभ्राणि रत्नानि तदा ववर्षुः ।
चन्द्राधिनाथस्य कृतावतारे, चन्द्रप्रभाभा समभूत्स सृष्टिः ॥२॥

अर्थ—भगवान् चन्द्रप्रभ स्वामी के जन्म कल्याण के समय उन के निर्मल पुण्यकर्मों के उदय से पंद्रह महीने पहले से रत्नो की वर्षा हुई थी और इस लिये उस समय यह समस्त सृष्टि चन्द्रमा की कांति के समान निर्मल कांति को धारण करने वाली हो गई थी ।

श्रीह्रीसुदेव्यो जिन ! चन्द्रकान्त्यः, समागता मातृसुसेवनाय ।
स्वप्नान् शुभान् षोडश लोकमानां, सिषेविरे चन्द्रप्रभां तदम्बाम् ॥३॥

अर्थ—हे जिन ! चन्द्रमा के समान कांति को धारण करने वाली श्री ह्री आदि देवियाँ आप की माता की सेवा करने के लिये आई थी और चन्द्रमा के समान निर्मल कांति को धारण करने वाली और शुभ सोलह स्वप्नो को देखती हुई आप की माता की सेवा कर रही थीं।

चन्द्रे सुपक्षे सितचन्द्रवारे, कृतावतारे सितचन्द्रलग्ने ।
चन्द्रप्रभेस्मिन् जितचन्द्रनाथे, जाता तदा द्यौः सितचन्द्रभाभा ।४

अर्थ—जिस समय चन्द्रमा का पक्ष अर्थात् शुक्ल पक्ष था, निर्मल चन्द्रवार था, निर्मल चन्द्र लग्न थी, उस समय चन्द्रमा की कांति को जीतने वाले भगवान् चन्द्रप्रभ स्वामी ने इस संसार में जन्म लिया था। उस समय यह आकाश निर्मल चन्द्रमा की कांति के समान निर्मल कांति को धारण करने लगा था।

चन्द्राभदेवेन्द्रगणाः प्रयाता, ऐरावणे शुभ्रगजे सुनीत्वा ।
मेरोस्तटे चन्द्रजिनं सुभक्त्या, क्षीरैश्च नीरैः स्नपनं प्रचक्रुः ॥५॥

अर्थ—चन्द्रमा के समान कांति को धारण करने वाले इन्द्र लोग स्वर्ग से निकले तथा भगवान् चन्द्रप्रभ स्वामी को सफेद हाथी पर विराजमान कर भक्ति पूर्वक मेरु पर्वत के किनारे लेगये वहाँ पर उन्हों ने क्षीरसागर के जल से भगवान् का अभिषेक किया था।

संसारभोगं विषयं व्यलीकं, त्यक्त्वाऽशुभं नित्यमलीमसं वा ।
तपः सुधास्यूतकरं चकार, चन्द्राधिनाथो जिनचन्द्रदेवः ॥६॥

अर्थ—ये संसार के भोग और विषय सब मिथ्या हैं, अशुभ हैं और सदा मलिन रहने वाले हैं; चन्द्रमा के स्वामी चन्द्रनाथ भगवान् ने इन सब का त्याग कर दिया था तथा मोक्षरूपी अमृत को उत्पन्न करने वाले तपश्चरण को धारण किया था।

धर्मस्वरूपं सितचन्द्ररूपं, कैवल्यमासाद्य सुधाकरं तम् ।
ववर्ष पीयूषगिरा सुभव्यान्, आनंदकंदो जिनचन्द्रनाथः ॥७॥

अर्थ—आनन्दकन्द भगवान् चन्द्रनाथ स्वामी ने अमृत के खजाने और निर्मल चन्द्रमा के समान शुद्ध ऐसे केवलज्ञान को पाकर भव्य जीवों के लिये अमृतरूपी वाणी से धर्म स्वरूप की वर्षा की थी।

ध्यानेन शुक्लेन समस्तकर्म, जघान चन्द्रो विमलः शिवेशः ।
पूतीकृतात्मा जगदेकनाथः, नित्यं पवित्रं च जगाम मोक्षम् ॥८॥

अर्थ—भगवान् चन्द्रप्रभ स्वामी अत्यंत निर्मल हैं, मोक्ष के स्वामी हैं, तीनों लोकों के एकमात्र नाथ हैं और उन्हो ने अपना आत्मा अत्यंत पवित्र कर लिया है; ऐसे वे भगवान् अपने शुक्ल ध्यान से समस्त कर्मों को नाश कर नित्य और पवित्र मोक्षस्थान में जा विराजमान हुए।

निरंजनं नित्यममूर्तरूपं, परं निराकारमतीव सूक्ष्मम् ।
सम्यक्त्वसद्दर्शनवीर्यवन्तं, ज्ञानस्वरूपं च पदं स लेभे ॥९॥

अर्थ—जो पद कर्ममल से सर्वथा रहित है, नित्य है, अमूर्त है, सर्वोत्तम है, निराकार है, अत्यंत सूक्ष्म है, अनन्त सम्यक्त्व,

अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य और अनन्त ज्ञान मय है अर्थात् अनत चतुष्टय स्वरूप है, ऐसा मोक्ष रूप पद भगवान् चन्द्रनाथ स्वामी ने प्राप्त किया था।

सुचन्द्रकान्ताय नमोस्तु तुभ्यं, श्रीचन्द्रनाथाय नमोस्तु तुभ्यम्।
चन्द्रोज्ज्वलज्ञानधनाय तुभ्यं, नमो नमश्चन्द्रजिनेश्वराय ॥१०॥

अर्थ—हे भगवन्! आप चन्द्रमा के समान काति को धारण करने वाले हैं, इसी लिये आप को नमस्कार हो। आप चन्द्रादि समस्त देवो के स्वामी हैं, इसी लिये आप को नमस्कार हो. आप चन्द्रमा के समान निर्मल ज्ञानरूपी धनको धारण करने वाले हैं, इसी लिये आप को नमस्कार हो, हे चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र देव! आप को वार वार नमस्कार हो।

भगवान् पुष्पदन्त की स्तुति

[जिनप्रतिमा-गर्भित]

रागादिदोषरहितान्निरलंकृतापि
हीनादिभावरहिताच्च निरंबरापि ।
हिंसास्वरूपरहिताद्विगतास्त्रकापि
सौम्या प्रशान्तवदना सुविधेः सुमूर्तिः ॥१॥

अर्थ—भगवान् पुष्पदन्त की मूर्ति रागादिक समस्त दोषो से रहित होने के कारण अलंकार रहित है, हीनाधिक भावों से रहित होने के कारण वस्त्र रहित भी है तथा हिंसा के स्वरूप से सर्वथा रहित होने के कारण सब प्रकार के शस्त्रों से रहित है और इसी लिये वह सौम्य है तथा उस का मुख अत्यंत शांत है।

क्रोधादिपावकजयात्स्वयमेव शान्ता,
मानेभसद्यविजयादविकाररूपा ।
मायापराभववशात्सरला च रम्या,
लोभादिग्रंथहननाद्विमला विरागा ॥ २ ॥

कामादिवीरविजयात्परमात्मरूपा,
दुर्जेयमोहहननात्समपास्तदोषा ।
मोहान्धकारविजयाद्वरबोधरूपा,
विघ्नारिकर्मविजयात्सुखशान्तिरूपा ॥ ३ ॥

जन्मान्तकादिरहितान्निजभावलीना,

तृष्णादिदोषरहितात्कृतकृत्यरूपा ।

देवाधिदेवसुविधेः परमेश्वरस्य,

लोकोत्तरा च शिवदा सुखदास्ति मूर्तिः ॥ ४ ॥

अर्थ—हे परमेश्वर ! हे देवाधिदेव भगवन् पुष्पदन्त! आप की मूर्त्ति लोकोत्तर है क्योकि वह क्रोधादि रूप अग्निको जीत लेने के कारण स्वयमेव शान्त है, मान-रूपी हाथी को शीघ्र ही जीत लेने के कारण विकार रहित है, माया का पराभव कर देने के कारण सरल और मनोहर है, लोभ आदि समस्त परिग्रहो का नाश कर देने के कारण निर्मल और वीतरागरूप है, काम आदि अन्तरंग शूरवीर शत्रुओ को जीत लेने के कारण परमात्म स्वरूप है, जो किसी से न जीता जा सके ऐसे मोह को सर्वथा नाश कर देने के कारण समस्त दोषो से रहित है, मोह रूपी अंधकार को जीत लेने के कारण श्रेष्ठ ज्ञान स्वरूपी है, विघ्न वा अंतराय कर्म रूप शत्रु को जीत लने के कारण सुख और शांति रूप है, जन्म-मरण आदि दोषो से रहित होने के कारण अपने आत्म-परिणामों मे लीन है, तृष्णा आदि दोषों से रहित होने के कारण कृत-कृत्य रूप है । हे नाथ ! इसी लिये आप की मूर्ति सुख देने वाली है और मोक्ष देने वाली है ।

सिंहासनेन भुवनाधिपतित्वमेति,

छत्रत्रयेण जगतः प्रभुतां बिभर्ति ।

भामंडलेन च महीश्वरतां प्रवक्ति,

विश्वेश्वरस्य तव देव विभाति मूर्तिः ॥ ५ ॥

अर्थ—हे नाथ ! हे देव ! आप समस्त संसार के ईश्वर है, इसी लिये आप को मूर्ति भी वहुत ही अच्छी शोभायमान हो रही है। सिंहासन पर विराजमान होने के कारण वह तीनो लोको की प्रभुता को धारण करती है और भामंडल को शोभा से समस्त पृथ्वी के स्वामीपने को प्रगट करती है।

स्वच्छाच्छचामरचयैः प्रविराजमाना,

सन्मंगलाष्टकगणैरतिशोभमाना ।

वृष्टयादिभिः सुमनसां परितोपि पूज्या,

मूर्तिर्विभो हरिहरादिकृतः प्रकृष्टा ॥ ६ ॥

अर्थ—हे विभो! हे नाथ ! आप की मूर्ति अत्यंत निर्मल और श्वेत चमरो के समूह से सुशोभित है, आठ प्रकार के मंगल द्रव्यो के समूह से अत्यंत शोभायमान है और पुष्प-वृष्टि आदि अन्य प्रातिहार्यों के कारण चारो ओर से वा सब प्रकार से पूज्य है। हे स्वामिन ! इसी लिये वह आप की मूर्ति हरि-हर आदि समस्त देवो से उत्तम है।

कुंदस्य कान्तिरिव भावव्रहावदाता,

सा चन्द्रकांतिरिव लोकविभासिका च ।

हारस्य यष्टिरिव सौख्यतरा सुरम्या,

श्रीपुष्पदन्तजिनपस्य विभाति मूर्तिः ॥ ७ ॥

अर्थ—हे पुष्पदन्त सर्वश्रेष्ठ जिनेन्द्र देव ! आप की मूर्ति कुंद पुष्प के समान निर्मल काति को धारणकरने वाले शुद्ध परिणामो को प्रगट करने वाली है, अत्यंत सुन्दर है, चन्द्रमा की कांति के समान तीनो लोको को प्रकाशित करने वाली है तथा पुष्पो के हार की लता के समान सुख देने वाली और मनोहर है, हे नाथ ! ऐसो आप की मूर्ति बहुत ही शोभायमान है।

आनन्दकन्द भगवन् तव मूर्तिरेषा ,
कल्याणकारि सुविधेः करुणालयस्य ।
दिव्या सुखावहनिधिर्वरदानदक्षा,
मां पातु मंगलकरी भवतोतिशीघ्रम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे भगवन् पुष्पदन्त स्वामिन्! आप आनन्द कन्द हैं, समस्त जीवों का कल्याण करने वाले हैं और करुणा के मंदिर हैं। हे नाथ ! इसी लिये यह आप की मूर्ति दिव्य रूप है, सुख देने वाली निधि है, मोक्षादिक उत्तम पदार्थों के देने में चतुर है और सब तरह के मंगल करने वाली है। हे प्रभो ! ऐसो वह आप की मूर्ति शीघ्र ही मेरी रक्षा करे।

देवासुरैर्नरवरैरिहपूज्यपादा,
योगीश्वरैर्यतिवरैर्भुवि सेविता सा ।
देवेन्द्रचन्द्रधरणेन्द्रसुसेवमाना,
मूर्तिः प्रभोर्ददतु मां शिवसौख्यसिद्धिम् ॥ ९ ॥

अर्थ—हे प्रभो ! देव, असुर और श्रेष्ठ मनुष्य सभी आप की मूर्ति के चरण-कमलो की पूजा करते हैं, समस्त योगीश्वर और

समस्त यतीश्वर उस की सेवा करते हैं तथा देवो के इन्द्र, चन्द्र, धरणेन्द्र आदि समस्त देवता भी उस की सेवा करते हैं। हे नाथ! ऐसी यह आप की मूर्ति मेरे लिये मोक्ष सुख की सिद्धि को प्रदान करे।

त्रैलोक्यमंगलकराय नमोस्तु तुभ्यं,
पुष्पावदातसुगुणाय नमोस्तु तुभ्यम्।
श्रीपुष्पदन्तजिनपाय नमोस्तु तुभ्यं,
विद्यावते सुविधये च नमोस्तु तुभ्यं॥ १०॥

अर्थ—हे पुष्पदन्त भगवन्! आप तीनों लोकों को मंगल करने वाले हैं, इस लिये आप को नमस्कार हो; आप पुष्पो के समान सुन्दर गुणो को धारण करने वाले हैं, इस लिये आप को नमस्कार हो; हे पुष्पदन्त! आप जिनेन्द्र देव हैं, इस लिये आप को नमस्कार हो तथा हे सुविधिनाथ! आप समस्त विद्याओं के स्वामी हैं, इस लिये आप को वार वार नमस्कार हो।

———

भगवान् शीतलनाथ की स्तुति

संसारसंतापहरो न चन्द्रः, जन्मान्ततापापहरो न हारः ।
यथा त्वमेकोप्यसि शीतलेशः, समस्तसंतापहरोऽत्र लोके ॥१॥

अर्थ—हे शीतलनाथ भगवन् ! जिस प्रकार आप इस लोक में समस्त संतापो को दूर करने वाले हैं उस प्रकार के संतापों को दूर करने वाला न तो चन्द्रमा है और न जन्म-मरण के संताप को दूर करने वाला कोई हार है ।

न चन्दनो मन्मथदाहहारी, कोपानलं शीतकरो न नीरः ।
नास्तीह सः शीतकरो हि कोपि, येनोपमीयेत सुशीतलोऽसौ ।२।

अर्थ—हे प्रभो ! इस ससार में कामदेव के दाह को नाश करने वाला न तो चन्दन है और न क्रोधरूप अग्नि को शात करने वाला जल है । हे शीतलनाथ भगवन् ! इह संसार मे ऐसा कोई भी शीतल करने वाला पदार्थ नही है जिस से आप की उपमा दी जाय ।

शीतीकृता येन भवस्य पीड़ा, शीतीकृतो येन समस्तलोकः ।
सः शीतलोऽसौ भुवनस्य नेता, मां पातु शीघ्रं भवतापतोऽत्र ॥३॥

अर्थ—जिन्हों ने संसार की पोड़ा शांत कर दी है तथा जिन्हो ने समस्त लोक शीतल वा शांत कर दिया है और इस संसार के

नेता हैं; ऐसे वे भगवान शीतल नाथ स्वामी इस संसार मे संसार के संताप से शीघ्र ही मेरी रक्षा करें।

क्षुत्तृट्जराजन्ममदादिदोषाः, ध्यानाग्निना येन समूलदग्धाः।
त्वं शीतकारी जिन शीतलोऽसि, लोकोत्तरं तेऽस्ति चरित्रमत्र ॥४॥

अर्थ—हे जिन ! आप ने अपनी ध्यानरूपी अग्नि से क्षुधा पिपासा-जरा-जन्म-मद आदि समस्त दोष मूल सहित जला दिये हैं तथापि हे शीतलनाथ ! आप संसार मे सब को शीतल और सुखी करने वाले हैं। हे प्रभो ! इसी लिये इस संसार में आप का चरित्र लोकोत्तर कहलाता है।

संसारतापेन नितान्तदग्धं, दीनं जनं मां तव भक्तिनम्रम्।
शान्ति प्रदद्याज्जिनशीतलोऽसौ, त्वत्तः परं कोपि न रक्षकोऽस्ति।५।

अर्थ—हे नाथ ! मैं अत्यन्त दीन मनुष्य हूँ और संसार के संताप से अत्यन्त जल रहा हूँ तथापि आप की भक्ति मे सदा नम्र रहता हूँ। हे प्रभो ! हे शीतल नाथ स्वामिन् ! आप ऐसे मुझ को शांति प्रदान कीजिये। क्योकि इस संसार में आप से बढ़ कर और कोई रक्षक नहीं है।

तस्माज्जिनेशास्त्र दयां विधाय, ममापराधं न विलोकयस्व।
कुरुष्व शान्तिं शरणागतस्य, त्राता त्वमेवासि यतो दयालुः ॥६॥

अर्थ—हे नाथ ! हे जिनेश ! मैं आप की शरण आया हूँ इसी लिये इस संसार में आप मुझ पर दया कीजिये, मेरे अपराधो को मत देखिये और मुझे शांति प्रदान कीजिये, क्योकि इस संसार में आप ही दयालु हैं और आप ही सब की रक्षा करनेवाले हैं।

मिथ्यात्वमोहादिवशेन चाप्तं, दुखं मया नाथ न वेद्मि किंचित् ।
त्वं वेत्सि सर्वं किमुपेक्षतेऽद्य, कृत्वा दयां मामिह रक्ष रक्ष ॥७॥

अर्थ—हे नाथ ! मोह और मिथ्यात्व के कारण इस संसार मे मैं ने अनेक दुःख पाये हैं तथा उन सब का मुझे ज्ञान भी नहीं है। हे प्रभो ! आप सर्वज्ञ हैं, सब को जानते हैं, फिर भला आप उपेक्षा क्यों कर रहे हैं ? कृपा कर आज ही मेरी रक्षा कीजिये और अवश्य कीजिये।

हे नाथ ! मिथ्यात्ववशेन पापं, संसारकूपे समुपार्जितं यत् ।
तस्योदयेनातिनिपीडितं मां, संसारकूपादिह रक्ष रक्ष ॥८॥

अर्थ—हे नाथ ! इस संसार रूपी कुए में पड़े हुए मैं ने मिथ्यात्व के वश होकर जो-जो पाप उपार्जन किये हैं, उन के उदय से मै बहुत ही दुःखी हो रहा हूँ । इसी लिये हे नाथ ! इस ससार रूपी कूए से मेरी रक्षा कीजिये।

नमो नमः शांतिकराय नाथ ! नमो नमो दुःखहराय देव !।
नमो नमः पापहराय स्वामिन्, श्रीशीतलेशाय नमो नमोऽस्तु ॥९॥

अर्थ—हे नाथ ! आप इस संसार में सब को शीतल करने वाले हैं, इस लिये आप को वार वार नमस्कार हो। हे देव ! आप समस्त दुःखों को दूर करने वाले हैं, इस लिये आप को वार वार नमस्कार हो तथा हे भगवन् श्रीशीतलनाथ स्वामिन् ! आप को वार वार नमस्कार हो।

भगवान् श्रेयांसनाथ की स्तुति

[दशजन्मातिशय-गर्भित]

श्रेयस्करं श्रेष्ठतमं प्रकृष्टं, श्रेयोधरं तं महिमान्वितं च ।
नमामि जन्मातिशयप्रपन्नं, श्रेयांसमीशं महसा गरिष्ठम् ॥१॥

अर्थ—भगवान् श्रेयांसनाथ स्वामी कल्याण करनेवाले हैं, अत्यन्त श्रेष्ठ है, सर्वोत्तम है, मोक्ष कल्याण को धारण करने वाले सब तरह की महिमाओ से सुशोभित हैं, अपने शरीर के तेज से गरिष्ठ हैं, सब के स्वामी हैं और जन्म के दश अतिशयो को प्राप्त हुए हैं; ऐसे भगवान श्रेयांसनाथ को मैं नमस्कार करता हूँ ।

नैर्मल्यके स्वच्छतरे पवित्रे, मलोद्भवस्पर्शलवो न कुत्र ।
यतो विकृत्यादिरजोविमुक्ता, यदंगनैर्मल्यगुणा जिनस्य ॥२॥

अर्थ—हे भगवन् ! आप का शरीर अत्यन्त निर्मल है, अत्यन्त स्वच्छ है और परम पवित्र है । इसी लिये उस मे मल से उत्पन्न होनेवाले स्पर्श का लेश भी नही है । तथा हे नाथ ! इसी लिये आप के शरीर के निर्मल गुण विकार आदि समस्त रज से वा दोषो से रहित हैं ।

सौगंध्ययुक्ते कनकाभिरामे, क्वचित्कदाचिन्न यतो यदंगे ।
स्वेदोदविन्दुः प्रभवत्यशेषे, निःस्वेदताधारिजिनं नमामि ॥३॥

अर्थ—हे भगवन्! आप का शरीर अत्यन्त सुगन्धि से सुगन्धित और सुवर्ण के समान सुन्दर है। इसी लिये उस में कभी किसी समय भी पसीने की बूँदे प्रगट नहीं होतीं हैं। हे प्रभो! इस प्रकार निःस्वेदता रूप गुण को धारण करने वाले आप के लिये मैं नमस्कार करता हूँ।

क्षीरेण तुल्यं रुधिरं यदंगे, निर्जन्तुकं स्याद्धवलं पवित्रम्।
स्वाभाविकं तद्गुणधारकोऽसौ, श्रेयोजिनः श्रेय इतीह भूयात् ॥४॥

अर्थ—हे भगवन! आप के शरीर का रुधिर दूध के समान सफेद है, जतुओं से रहित है और स्वभाव से ही पवित्र है। इस प्रकार क्षीर रुधिर गुण को धारण करनेवाले भगवान श्रेयासनाथ इस ससार में मेरे लिये भी कल्याणरूप हो।

आद्यं महासंहननं यदीयं, वज्रेण तुल्यं पविनाप्यभेद्यम्।
दृढं मनोज्ञं कमनीयकान्तं, श्रेयांसमीडे जिनपं तमीशम् ॥५॥

अर्थ—हे श्रेयासनाथ स्वामिन्! आप का जो संहनन वज्रवृषभ नाराचसंहनन है वह वज्र के समान है, वज्र से भी अभेद्य है, अत्यन्त दृढ़ है और बहुत ही मनोज्ञ है। इस प्रकार अत्यन्त सुन्दर शरीर को धारण करने वाले जिनेन्द्रदेव भगवान् श्रेयांसनाथ की मैं स्तुति करता हूँ।

मानेन चोन्मानमितं यदीयमंगं समस्तं विषमांगहीनम्।
संस्थानमाद्यं सुखदं मनोज्ञं, श्रेयोजिनं तं प्रणमामि दिव्यम् ॥६॥

अर्थ—हे भगवन्! आप का समस्त शरीर प्रमाण से उतना ही है जितना कि होना चाहिये। वह विषमता से रहित है और

इसी लिये उस को समचतुरस्र संस्थान कहते हैं। वह आप का शरीर सुख देने वाला है, मनोज्ञ है, दिव्य है और कल्याण करने वाला है। हे श्रेयांसनाथ! ऐसे आप को मैं नमस्कार करता हूँ।

लावण्यसत्कान्तिमनोज्ञतायाः, स्थानं यदीयं सहजस्वरूपं।
दृष्टुं तदिन्द्रोपि सहस्रनेत्र, आसीच्च सौरूप्यजिनं नमामि ॥७॥

अर्थ—हे नाथ! आप का स्वाभाविक रूप लावण्य-कांति और मनोज्ञता का स्थान है और इसी लिये इन्द्र ने भी उस को देखने के लिये अपने हजार नेत्र बनाये थे। ऐसे सौरूप्य गुण को धारण करने वाले हे जिन! आप के लिये मैं नमस्कार करता हूँ।

अंगस्य यस्येह सुगंधि गंधं, जेतुं समर्थो न च कोपि लोके।
सौरभ्यसंयुक्तजिनस्य देहं, सर्वोत्तमं सर्वगुणं नमामि ॥८॥

अर्थ—जिन के शरीर की सुगंधित गंध को जीतने के लिये इस संसार में कोई भी समर्थ नहीं है। हे जिन! ऐसी सुगंधता से सुशोभित तथा सर्वोत्तम और समस्त गुणों से विराजमान आप के शरीर को मैं नमस्कार करता हूँ।

स्वर्णाचलं चालयितुं समर्थं, त्रलोक्यमुद्धर्तुमलं महान्तं।
श्रेयोजिनस्यैतदमेयवीर्यं, श्रेयांसमीडे च महाबलं तम् ॥ ९ ॥

अर्थ—भगवान् श्रेयांसनाथ का अपार वीर्य वा अपार शक्ति सुमेरु पर्वत का भी चलायमान करने में समर्थ है तथा तीनों लोकों को उठाने मे भी समर्थ है, इस के सिवाय वह शक्ति बहुत ही प्रबल है, ऐसे महाबल को धारण करने वाले श्रेयांसनाथ भगवान् की मैं स्तुति करता हूँ।

अष्टौ सहस्रं शुभलक्षणं ते, व्यनक्ति लोके विपुलं महत्त्वम् ।
सर्वोत्तमं वा पुरुषोत्तमं वा, श्रेयांसमीडे रतिनाथनाथम् ॥१०॥

अर्थ—हे भगवन् ! आप के शरीर में प्रगट होने वाले एक हजार आठ लक्षण इस संसार मे आप के बड़े भारी महत्त्व को प्रगट करते हैं। हे प्रभो ! आप सर्वोत्तम है अथवा पुरुषोत्तम हैं और कामदेव के भी स्वामी है। हे श्रेयान्सनाथ। ऐसे आप की मैं स्तुति करता हूँ।

शुभावहोऽसौ मधुरोघहारी, नित्यं प्रजायेत यतः स्वतो हि ।
यद्गीःप्रघोषो जनसौख्यकारी, श्रेयांसमीडे हि ततो त्रिकालम् ११

अर्थ—हे भगवन् ! गृहस्थावस्था मे भी वातचीत करते समय आप की जो भाषा निकलती है वह लोगो को सुख देने वाली होती है, अत्यन्त शुभ होती है, मधुर होती है और सब पापो को नाश करने वाली होती है। तथा केवल ज्ञानी अवस्था मे जो भगवान् का दिव्यध्वनि खिरती है वह भी स्वभाव से ही निकलती है जो जीवों के पापों को नाश करती है। हे नाथ! आप की ऐसी भाषा स्वभाव से ही निकलता है, ऐसे मधुर भाषण करने वाले भगवान् श्रेयास नाथ की मैं तीनो समय स्तुति करता हूँ।

श्रेयःस्वरूपं शिवदं नमामि, श्रेयस्करं मंगलदं नमामि ।
पुण्योज्झितं पुण्यकरं नमामि, श्रेयोजिनं धर्मकरं नमामि ॥१२॥

अर्थ—भगवान् श्रेयासनाथ स्वामी कल्याणमय हैं और मोक्ष देने वाले है, इसी लिये मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ। वे कल्याण

और मंगल करने वाले हैं, इसी लिये मैं उन्हे नमस्कार करता हूँ। वे पुण्य से रहित हैं तथापि पुण्य उत्पन्न करने वाले हैं, इसी लिये मैं उन्हे नमस्कार करता हूँ। तथा वे भगवान् श्रेयांसनाथ स्वामी धर्म को बढ़ाने वाले हैं, इसी लिये मैं उन्हे वार वार नमस्कार करता हूँ।

भगवान् वासुपूज्य की स्तुति

[दशकेवलज्ञानातिशय-गर्भित]

कैवल्यबोधातिशयप्रपन्नः, सत्प्रातिहार्यादिविभूतियुक्तः ।
श्रीवासवैः पूजितपादपद्मः, श्रीवासुपूज्यस्तु शिवं प्रदद्यात् ॥१॥

अर्थ—जो श्रीवासुपूज्य स्वामी केवलज्ञान के दश अतिशयो से सुशोभित हैं, श्रेष्ठ प्रातिहार्यों की विभूति से विभूषित हैं और समस्त इन्द्र जिन के चरण-कमलों की पूजा करते हैं, ऐसे श्री वासुपूज्य स्वामी मुझे मोक्ष प्रदान करें ।

सौख्यप्रदा सर्वसुभिक्षता स्यात्, दुःखप्रणाशः शतयोजने वा ।
अपूर्वपुण्योदयतश्च तस्य, श्रीवासुपूज्यः स सुखं प्रदद्यात् ॥२॥

अर्थ—जिन श्रीवासुपूज्य भगवान् के अपूर्व पुण्य कर्म के उदय से सौ योजन तक समस्त जीवों को सुख देने वाली सुभिक्षता हो जाती है अथवा सब जीवों के दुःखों का नाश हो जाता है, ऐसे वे भगवान् श्रीवासुपूज्य स्वामी मुझे भी सुख देवें ।

यस्यान्तरिक्षे गमनं मनोज्ञं, पादप्रचारेण विना विचित्रम् ।
सौवर्णपंकेरुहनित्यसेव्यं, तं वासुपूज्यं प्रवरं नमामि ॥३॥

अर्थ—भगवान् वासुपूज्य स्वामी का मनोहर गमन आकाश में ही होता है तथा आश्चर्य उत्पन्न करने वाला पैरों के उठाए रक्खे विना ही होता है और उस समय भी सुवर्णमय अनेक कमल

उन चरण-कमलों की सेवा करते रहते हैं, ऐसे सर्व-श्रेष्ठ उन वासुपूज्य भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ।

सिंहादिसत्त्वैरपि जीवबाधा, क्वचित्कदाचित् न भवेत्तदानीम्।
धर्मस्य मूर्तौ त्वयि रक्षकेऽस्मिन्, श्रीवासुपूज्येऽभयदे प्रशान्ते ॥४॥

अर्थ—भगवान् वासुपूज्य स्वामी धर्म की मूर्ति हैं, सब जीवों के रक्षक हैं, सब को अभयदान देने वाले हैं और अत्यन्त शान्त हैं, ऐसे भगवान् वासुपूज्य के विराजमान रहने पर उन के समवसरण में कहीं किसी समय में सिंहादिक क्रूर प्राणियों से भी किसी जीव को किसी प्रकार की बाधा नहीं होती है।

प्रक्षीणमोहस्य नवास्ति भुक्तिर्नासातवेद्यस्य विपाकनाशात्।
अनंतसौख्यामृतभुक्तितृप्तः, तद्भुक्त्यभावं जिनपं नमामि ॥५॥

अर्थ—हे भगवन्! वासुपूज्य स्वामिन्! आप का मोहनीय कर्म सब नष्ट हो गया है तथा असाता वेदनीय कर्म का अशुभोदय नष्ट हो गया है, इस लिये आप के कवलाहार का सर्वथा अभाव है। आप अनन्त सुखरूपी अमृत के भोजन से तृप्त रहते हैं, इस लिये कवलाहार के अभाव से शोभायमान भगवान् वासुपूज्य को मैं नमस्कार करता हूँ।

नैवेतयो भीतिरिहाधिरत्र, व्याधिर्न वा नाप्युपसर्गवर्गः।
त्रैलोक्यनाथे निजभावमग्ने, श्रीवासुपूज्ये प्रविराजमाने ॥६॥

अर्थ—अपने आत्म-परिणामों में लीन हुए और तीनों लोकों के स्वामी भगवान् वासुपूज्य स्वामी जहां विराजमान होते हैं

वहाँ पर न तो किसी प्रकार की ईति होती है, न भीति होती है, न आधि (अन्तरंग दुःख) होती है, न किसी प्रकार को व्याधि होती है और न वहाँ पर कभी उपसर्गों का समूह आ सकता है।

त्रैलोक्यजीवानुपदेशकत्वाच्चतुष्टयानन्तसदोदयाच्च ।
चतुष्ककर्मास्रवभेदकत्वात्, प्राप्तो जिनोऽसौ चतुरास्यतां हि।७।

अर्थ—भगवान् वासुपूज्य स्वामी तीनों लोकों के जीवों को उपदेश देते हैं, उन के चारों अनंत चतुष्टयों का सदा उदय रहता है और चारों घातिया कर्मों का आस्रव उन्हों ने नष्ट कर दिया है; इसी लिये उन्हें चारों दिशाओं में चार मुख प्राप्त हुए हैं।

घातिक्षयादात्मविशुद्धभावात्सर्वज्ञतां यः सहसा जगाम ।
तेनैव विद्येश्वरतां प्रयातः, श्रीवासुपूज्यः प्रददातु विद्याम् ॥८॥

अर्थ—घातिया कर्मों का नाश होने से और आत्मा के विशुद्ध परिणामों से भगवान् वासुपूज्य स्वामी उसी समय सर्वज्ञ अवस्था को प्राप्त हो गए थे तथा उन्हीं दोनों कारणों से वे भगवान् समस्त विद्याओं के ईश्वर बन गए थे; ऐसे वे श्रीवासुपूज्य स्वामी मुझे भी विद्या प्रदान करें।

औदारिकं यः परमं प्रकृष्टं, छायाविहीनं महसा गरिष्ठम् ।
देहं प्रधत्ते च सुरेशपूज्यं, सत्यं त्वमेवासि हि वासुपूज्यः ॥९॥

अर्थ—हे भगवन् वासुपूज्य स्वामिन्! आप जिस परमौदारिक शरीर को धारण करते हैं, वह सर्वोत्कृष्ट है, छाया रहित है, देदीप्यमान तेज से सुशोभित है और इन्द्रों के द्वारा भी पूज्य है; हे नाथ! इसी लिये आप यथार्थ में वासुपूज्य कहलाते हैं।

निमेषहीनं नयनं त्वदीयममानुषआकृतिकं मनोज्ञम् ।
तेनैव जीवन्नपि देव साक्षात्, दैवंपदं प्राप सुवासुपूज्यः ॥१०॥

अर्थ—हे भगवन् वासुपूज्य स्वामिन् ! आप के मनोहर नेत्र टिमिकार रहित हैं और इसी लिये स्वाभाविक और मानुपोत्तर कहलाते है। इसी कारण हे देव ! आप जीवित रहते हुए भी साक्षात् देव पद को प्राप्त हो गये हैं।

ध्यानस्य शक्त्या ह्युपधातुनाशात्, देहे प्रणष्टा नखकेशवृद्धिः ।
त्वं योगिनाथोऽसि यतो धरित्र्यां,ध्यानेन जायेत न का च सिद्धिः ११

अर्थ—हे भगवन् ! ध्यान की परम शक्ति से आप के शरीर मे उपधातुओं का नाश हो गया है। इसी लिये आप के शरीर मे नख-केशों की वृद्धि नहीं होती । तथा इसी लिये हे प्रभो ! आप इस संसार मे योगीश्वर कहलाते हैं। हे नाथ ! इस संसार मे ध्यान से किस-किस पदार्थ की सिद्धि नहीं होती है अर्थात् सभी पदार्थों की सिद्धि हो जाती है।

बोधेश बोधातिशयप्रपन्नो, योगीश्वरोऽसौ भुवनेशवंद्यः ।
श्रीवासुपूज्यो भुवि धर्मनेता, जीयाज्जगत्यां जगदेकनाथः ।१२।

अर्थ—हे केवलज्ञान के स्वामी भगवन् वासुपूज्य ! आप केवलज्ञान के दश अतिशयो को प्राप्त हुए है, आप योगीश्वर हैं, तीनो लोकों के द्वारा वंद्य हैं, इस संसार मे धर्म के नेता हैं और तीनो लोकों के एकमात्र स्वामी हैं; ऐसे हे वासुपूज्य भगवन् ! आप इस जगत् मे सदा जयशील हों।

नमामि बोधातिशयप्रभावं, नमामि देवेन्द्रगणैः प्रवंद्यम् ।
नमामि लौकैकगुरुं जिनेन्द्रं, नमाम्यहं तं भुवि वासुपूज्यं ॥१२

अर्थ—जो पृथ्वी पर ज्ञानातिशय के प्रभाव से संयुक्त हैं, जो देवेन्द्रो के समूहो से पूजित हैं और ससार के अद्वितीय गुरु हैं, ऐसे श्रीवासपूज्य भगवान को मै नमस्कार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ।

भगवान् विमलनाथ की स्तुति

[चतुर्दश-देवकृतातिशय-गर्भित]

ज्ञानं यदीयं विमलं मनोज्ञं, ध्यानं यदीयं विमलं विशुद्धम् ।
तपो यदीयं विमलं प्रकृष्टं, नमाम्यहं तं विमलं जिनेशम् ॥१॥

अर्थ—हे प्रभो ! जिन विमलनाथ स्वामी का ज्ञान अत्यन्त निर्मल और मनोज्ञ है, जिन का ध्यान अत्यन्त निर्मल और विशुद्ध है, जिन का तपश्चरण अत्यन्त निर्मल और उत्तम है; ऐसे भगवान विमलनाथ जिनेन्द्र देव को मैं नमस्कार करता हूँ।

सम्यक्त्वशाली मगधः सुरेशः, भाषां सुगूढां तव मागधीयाम् ।
करोति तां द्वादशयोजनान्तां, भाषापतिं तं विमलं नमामि ॥२॥

अर्थ—हे भगवन् ! सम्यग्दर्शन से शोभायमान मागध जाति का देवराज आप की गूढ़ मागधी भाषा को बारह योजन तक बराबर फैलाता रहता है। हे नाथ ! हे विमलनाथ स्वामिन् ! ऐसी भाषा के स्वामी आप को मैं नमस्कार करता हूँ।

यत्सन्निधौ जीवगणा रमन्ते, परस्परं ते प्रविहाय वैरम् ।
मैत्रीं धरन्ते प्रणयेन शीघ्रं, तं सौम्यमूर्तिं विमलं नमामि ॥३॥

अर्थ—मृग-सिंह आदि जाति-विरोधी अनेक जीव भी जिन के समीप रह कर अपना वैर भाव छोड़ कर परस्पर एक दूसरे के साथ क्रीड़ा करते हैं और प्रेम करते हुए शीघ्र ही मैत्री भाव धारण

कर लेते हैं, ऐसे शांति-मूर्ति को धारण करनेवाले भगवान् विमलनाथ को मैं नमस्कार करता हूँ।

प्रमोदकारी ज्वरतापहारी, श्रमप्रहारी पवनोतिमन्दः ।
यस्य प्रभावाद्विहरत्यजस्रं, तं देवदेवं विमलं नमामि ॥४॥

अर्थ—जिन के प्रभाव से सब जीवों को प्रसन्न करनेवाला, ज्वर के संताप को नाश करनेवाला और सब प्रकार के परिश्रम को दूर करने वाला शीतल मन्द सुगन्धित पवन सदा चला करता है, ऐसे देवाधिदेव भगवान् विमलनाथ को मैं नमस्कार करता हूँ।

पांशूत्करं कंटकशर्करालिं, यस्य प्रभावाद्दिविजा हरन्ति ।
कुर्वन्ति भूमिं जनमोददां च, तं देवदेवं विमलं नमामि ॥५॥

अर्थ—जिन के प्रभाव से देव लोग पृथ्वी की समस्त धूलि को तथा काँटे-कंकड़ आदि को दूर कर पृथ्वी को आनन्द-दायक बना देते हैं, ऐसे देवाधिदेव भगवान् विमलनाथ स्वामी को मैं नमस्कार करता हूँ।

दृक्शुद्धदेवो हि करोति हर्षात्, दिशां विशुद्धामपि निर्मलां च।
यस्य प्रभावात्सुखदां प्रसन्नां, तं देवदेवं विमलं नमामि ॥६॥

अर्थ—जिन के प्रभाव से शुद्ध सम्यग्दर्शन को धारण करने वाले देव बड़े हर्ष से सब दिशाओं को विशुद्ध-निर्मल स्वच्छ और सुख देने वाली बना देते हैं, ऐसे देवाधिदेव भगवान् विमलनाथ को मैं नमस्कार करता हूँ।

विशुद्धदृग्मेघकुमारदेवः, यस्य प्रभावादतिगंधवृष्टिम् ।
जनानुकूलं च करोति हर्षात्, तं देवदेवं विमलं नमामि ॥७॥

अर्थ—जिन के प्रभाव से शुद्ध सम्यग्दर्शन को धारण करने वाले मेघकुमार देव प्रसन्न होकर लोगों के अनुकूल अत्यन्त सुगन्धित जल की वृष्टि करते है, ऐसे देवाधिदेव भगवान् विमलनाथ स्वामी को मै नमस्कार करता हूँ।

यत्पादपद्मे प्रकरन्ति देवाः, स्वर्णाभपद्मं विमलं सुगन्धम् ।
यस्य प्रभावात्सुरनेत्ररम्यं, तं देवदेवं विमलं नमामि ॥८॥

अर्थ—जिन के प्रभाव से देव लोग उन के चरण-कमलो मे अत्यन्त निर्मल सुगन्धित और देवो के नेत्रो को भी मनोहर ऐसे सुवर्णमय कमलो की वर्षा करते हैं, ऐसे देवाधिदेव भगवान् विमलनाथ को मै नमस्कार करता हूँ।

धान्यैः फलैः सस्यचयैस्तृणैश्च, तां पूरिताशां धरणीं सुरम्याम् ।
कुर्वन्ति देवा इह यत्प्रभावात्तं देवदेवं विमलं नमामि ॥ ९॥

अर्थ—जिन के प्रभाव से देवलोक इस संसार की पृथ्वी को फल-फूल-तृण-धान्य आदि से पूर्ण कर समस्त दिशाओ को मनोहर बना देते हैं, ऐसे श्रीविमलनाथ स्वामी को मै नमस्कार करता हूँ।

निरभ्रमभ्रं विरजं सुशान्तं, करोति यक्षो हि विशुद्धदृष्टिः ।
यस्य प्रभावात्सुखदं सुरम्यं, तं देवदेवं विमलं नमामि ॥१०॥

अर्थ—जिन के प्रभाव से शुद्ध सम्यक्त्व को धारण करने वाले यक्षदेव आकाश को बादल-रहित, धूलि-रहित, अत्यन्त शांत, सुख देने वाला और मनोहर बना देते हैं, ऐसे देवाधिदेव विमलनाथ भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ।

सुराः सुरेशाश्च परस्परं ते, समाह्वयन्तः प्रणयेन साक्षात्।
यस्य प्रभावाज्जयमुच्चरन्ति, तं देवदेवं विमलं नमामि ॥११॥

अर्थ—जिनके प्रभाव से देव और इन्द्र सब मिलकर प्रेम-पूर्वक साक्षात् परस्पर एक दूसरे को बुलाते हैं और भगवान् की जय घोषणा करते हैं ऐसे देवाधि देव भगवान विमलनाथ को मैं नमस्कार करता हूं।

श्रीधर्मचक्रं महसा गरिष्ठं, दृक्शुद्धयक्षो हि बिभर्ति हर्षात्।
धर्मस्य चिह्नं भवतां प्रभावात्तं, देवदेवं विमलं नमामि ॥१२॥

अर्थ—हे भगवन्! आप के ही प्रभाव से शुद्ध सम्यग्दर्शन को धारण करनेवाले यक्ष अपने तेज से अत्यन्त देदीप्यमान और धर्म का चिह्न ऐसे श्री धर्म चक्र को बड़े हर्ष से धारण करते हैं ऐसे देवाधि देव भगवान् विमलनाथ को मैं नमस्कार करता हूं।

विश्वंभरा रत्नमयी मनोज्ञा, आदर्श तुल्या विमला विशुद्धा।
यस्य प्रभावात्क्रियते सुदेवैस्तं देवदेवं विमलं नमामि ॥१३॥

अर्थ—जिन के प्रभाव से देव लोग इस पृथ्वी को रत्नमय मनोहर दर्पण के समान निर्मल और विशुद्ध बना देते हैं ऐसे देवाधिदेव विमलनाथ भगवान् को मैं नमस्कार करता हूं।

पुष्पैस्तृणैः पत्रचयांकुरैश्च, दृक्शुद्धयक्षः प्रकरोति भूमिम्।
यस्य प्रभावाज्जनसौख्यदात्री, तं देवदेवं विमलं नमामि ॥१४॥

अर्थ—जिन के प्रभाव से शुद्ध सम्यग्दर्शन को धारण करने वाले यक्ष लोग इस पृथ्वी को पुष्प-तृण-पत्ते-अंकुर आदि के समूह से

जीवो को अत्यन्त आनन्द देनेवाली बना देते हैं, ऐसे देवाधिदेव विमलनाथ को मैं नमस्कार करता हूँ।

यस्य प्रभावात् खलु धारयन्ति, सभावनौ मंगल वस्तु सर्वम्।
शीर्षे निजे भक्तिभराःसुयक्षास्तं देवदेवं विमलं नमामि ॥१५॥

अर्थ—जिन के प्रभाव से भक्ति से भरे हुए यक्ष देव समवसरण सभा की भूमि मे अपने मस्तक पर सब प्रकार के मंगल द्रव्य धारण करते हैं ऐसे देवाधिदेव भगवान् विमलनाथ को मैं नमस्कार करता हूँ।

भगवान् अनंतनाथ की स्तुति

(अनंतचतुष्टयवर्णन-गर्भित)

अबाधिता यस्य निजात्मशक्तिः, अगाधवीर्यं वरयोगिगम्यम् ।
तेनात्र लोके युगपत्समस्तं, जानात्यसौ पश्यति सोप्यनन्तः ॥१॥

अर्थ—भगवान् अनंतनाथ की आत्म-शक्ति अबाधित है तथा श्रेष्ठ योगियो के द्वारा जाना जा सके ऐसा उन का अनंत वीर्य भी अगाध है। उसी अनंत वीर्य के द्वारा वे अनंतनाथ भगवान् उस समस्त लोक और अलोक को एक साथ जानते और देखते हैं।

अनंतसंसारविभेदकं यद्, ह्यनन्ततत्त्वप्रतिभासकं वा ।
अनन्तविज्ञानमिदं जिनस्य, नान्तो च यस्येह भवेत्कदाचित् ॥२॥

अर्थ—भगवान् अनन्तनाथ स्वामी का ज्ञान अनंत है. वह अनंत ज्ञान अनंत संसार का नाश करने वाला है और अनंत तत्त्वो के स्वरूप को प्रकाशित करने वाला है। इस संसार में उस अनंत ज्ञान का कभी भी अन्त नहीं आ सकता।

अतीन्द्रियं स्वात्मगतं यदीयं, स्वाभाविकं दर्शनकं ह्यनन्तम् ।
जगत्त्रयं येन च दृश्यते सदा, ह्यनन्तनाथं तमहं नमामि ॥३॥

अर्थ—जिन का दर्शन गुण भी अनंत है, वह दर्शन गुण अतीन्द्रिय है, अपने शुद्ध आत्मा से प्राप्त हुआ है और स्वभाव

से ही प्रगट हुआ है; उसी अनंत दर्शन से वे भगवान् तीनों लोकों को सदा देखते रहते हैं; ऐसे उन अनंतनाथ भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ।

अनन्तमोहप्रगमादनन्तमात्मोद्भवं संततनिर्विकल्पम्।
अनन्तसौख्यं विगतान्तरायमनन्तनाथः स च तत्प्रपेदे ॥४॥

अर्थ—भगवान् अनन्तनाथ ने अनन्त मोह का नाश कर दिया है, इसी लिये उन को जिस का कभी अन्त नही होता, जो अपने आत्मा से उत्पन्न हुआ है, जो अन्तराय वा विघ्नो से रहित है और जो संकल्प-विकल्पो से सदा रहित है, ऐसा अनंत सुख प्राप्त हुआ है।

चतुष्ककर्मप्रविभेदनेन, जगाम योऽनन्तचतुष्टयत्वम्।
अनन्तमाहात्म्यसमन्वितं तमनन्तनाथं प्रणमामि भक्त्या ॥५॥

अर्थ—भगवान् अनन्तनाथ ने चारो घातिया कर्मों का नाश कर दिया है, इसी लिये उन्हे अनन्त माहात्म्य से सुशोभित अनन्त चतुष्टय प्राप्त हुआ है; ऐसे उन अनन्तनाथ भगवान् को मैं भक्ति पूर्वक नमस्कार करता हूँ।

स्तोत्रैरनन्तैरतिगूढशब्दैर्गीतः स्तुतोऽनन्तसुरेशभूपैः।
योऽनन्तलोकाधिपतित्वमाप, ह्यनंतनाथं तमहं नमामि ॥६॥

अर्थ—हे अनन्तनाथ भगवन्! आप अनन्त लोकालोक के अधिपतित्व को प्राप्त हुए हैं, इसी लिये अनेक इन्द्रों ने तथा अनेक राजाओं ने अत्यन्त गूढ़ शब्दो से भरे हुए अनन्त स्तोत्रों

से आप की स्तुति की है तथा आप का यश वर्णन किया है ; ऐसे हे अनंतनाथ भगवन् ! आप को मैं नमस्कार करता हूँ।

नमाम्यनन्तं दुरितं हरामि, नमाम्यनन्तं सुगतिं भजामि ।
नमाम्यनन्तं भवतां त्यजामि, नमाम्यनन्तं शिवतामियामि ॥७॥

अर्थ—मै अनतनाथ भगवान को नमस्कार करता हूँ और पापों को नष्ट करता हूँ। भगवान् अनन्तनाथ को नमस्कार करता हूँ और परम शुभ गतिया को प्राप्त होता हूँ। भगवान अनंतनाथ को नमस्कार करता हूँ और जन्म-मरण रूप ससार का त्याग करता हूँ। मैं अनन्तनाथ भगवान् को नमस्कार करता हूँ और मोक्ष अवस्था को प्राप्त होता हूँ।

तथा हि माता न पिता न बन्धुर्न भ्रातृवर्गो न सुहृज्जनो वा ।
त्राता यथा त्वं भवबन्धनाद्धि, ततो ह्यनन्तं जिनपं नमामि ॥८॥

अर्थ—हे अनन्तनाथ भगवन्! इस संसार मे जिस प्रकार संसार के कठोर बँधनो से रक्षा करने वाले आप हैं उस प्रकार से रक्षा करने वाले न तो माता हैं, न पिता हैं, न भाई हैं, न गोत्र में उत्पन्न होनेवाले भाई बन्धु हैं। हे जिनेन्द्रदेव अनंतनाथ भगवन्! इसी लिये मैं आप को नमस्कार करता हूँ।

जगद्विजेतुर्हि यमस्य दंष्ट्रान्, त्राता न कोप्यस्ति भवे विशाले।
हेऽनंतनाथात्र दयां विधाय, देहि स्वहस्तं मम रक्ष रक्ष ॥९॥

अर्थ—हे अनन्तनाथ भगवन्! इस अनंत संसार मे आप के सिवाय समस्त संसार को जीतने वाले इस यम की डाढ़ से

रक्षा करने वाला और कोई नहीं है। इसी लिए हे नाथ! मुझ पर दया कीजिए।

भवाग्निविध्यापकवारिधारमुत्तुंगमोहाद्रिसुचूर्णवज्रम्।
कुकर्मकाष्ठस्य धनंजयं वा, व्रजाम्यनन्तं शरणं जिनेशम् ॥१०॥

अर्थ—भगवान् अनन्तनाथ स्वामी संसार रूपी अग्नि बुझाने के लिये मेघ की धारा के समान हैं, बहुत ऊंचे मोह रूपी पर्वत को चूर्ण करने के लिए वज्र के समान हैं और अशुभ कर्म रूपी काठ को जलाने के लिये अग्नि के समान हैं। ऐसे भगवान् जिनेन्द्र देव अनंतनाथ की मै शरण लेता हूँ।

नमो नमोऽनन्तसुबोधदाय, नमो नमोऽनन्तसुसौख्यदाय।
नमो नमोऽनन्तसुवीर्यदात्रे, नमो नमोऽनन्तजिनाय भर्त्रे ॥११॥

अर्थ—भगवान् अनन्तनाथ स्वामी अनन्त ज्ञान देने वाले है, इसी लिये मैं उन को वार वार नमस्कार करता हूँ। वे भगवान् अनन्त सुख को देने वाले हैं, इस लिये मै उन को वारवार नमस्कार करता हूँ। वे भगवान् अनन्तनाथ स्वामी अनन्त शक्ति वा अनन्त वीर्य को देने वाले हैं, इस लिये मैं उन्हे वार वार नमस्कार करता हूँ तथा वे भगवान् अनन्त नाथ जिनेन्द्र हैं और सब के स्वामी हैं, इसी लिये मैं उन्हे वार वार नमस्कार करता हूँ।

भगवान् धर्मनाथ की स्तुति
(दिव्यध्वनिवर्णन-गर्भित)

सुदिव्यभाषापतिमव्ययं तं, दिव्यध्वनीशं विभुमीश्वरं च ।
पदार्थतत्त्वादिकभासकं हि, श्रीधर्मतीर्थेश्वरमर्चयामि ॥१॥

अर्थ—श्रीधर्मनाथ तीर्थंकर दिव्य भाषा के स्वामी हैं, अव्यय वा नाश रहित हैं, दिव्यध्वनि के प्रगट कर्त्ता स्वामी हैं, विभु वा ज्ञान के द्वारा व्यापक हैं, ईश्वर हैं और तत्त्व वा पदार्थों को प्रकाश करने वाले हैं, ऐसे भगवान् धर्मनाथ की मैं पूजा करता हूँ ।

तत्त्वादिकस्थानगतप्रयासहीनोऽपि यः साक्षरवर्णरूपः ।
दिव्यध्वनिः श्रेष्ठतरो बभूव, श्रीधर्मनाथस्य तदा सभायाम् ॥२॥

अर्थ—उस समय समवसरण सभा में जो भगवान धर्मनाथ की दिव्यध्वनि हुई थी, वह तालु-कंठ आदि उच्चारण स्थानों के प्रयास से रहित थी तथापि अक्षर सहित वर्ण रूप थी अर्थात् मूर्ति और साक्षर थी तथा सर्व श्रेष्ठ थी ।

विशेषभाषात्मकशक्तिधुर्यो, ह्यनादिमिथ्यात्वतमःप्रहंता ।
श्रीधर्मनाथध्वनिराविरासीदगम्यरूपः प्रवरः सभायाम् ॥३॥

अर्थ—उस समवसरण सभा मे भगवान् धर्मनाथ की जो दिव्यध्वनि हुई थी वह विशेष विशेष भाषाओ की शक्ति प्रगट करने मे धुरंधर थी, अनादि काल से लगे हुए मिथ्यात्व रूपी

अन्धकार को नाश करने वाली थी गणधर देवो के द्वारा भी अगम्य थी और अत्यन्त श्रेष्ठ थी।

गंभीरघोषो मधुरोतिदिव्यः, स्याद्वादचिह्नः सुनयावतंसः।
ध्वनिः प्रजायेत यतो जिनस्य, श्रीधर्मनाथस्य च पापहंता ॥४॥

अर्थ—उस समय भगवान् धर्मनाथ की जो दिव्य ध्वनि प्रगट हुई थी, वह अत्यन्त मधुर थी, अत्यन्त दिव्य थी, स्याद्वाद के चिह्न से चिह्नित थी, उस के शब्द गंभीर थे और इसी लिये वह समस्त पापो को नाश करने वाली थी।

प्रचंडदुर्वादिमदप्रवज्रः, प्रीतिप्रदो भावुककेकिनां यः।
दुर्भावदुर्बुद्धिविकारहीनो, जातो ध्वनिर्धर्मजिनस्य लोके ॥५॥

अर्थ—इस लोक में भगवान् धर्मनाथ की जो दिव्य ध्वनि प्रगट हुई है, वह अत्यन्त प्रचड मिथ्यावादियो के मद को चूर्ण करने के लिये वज्र के समान है, भव्य रूपी मयूरो को प्रेम उत्पन्न करने वाली है और अशुभ परिणाम तथा दुर्बुद्धि के समस्त विकारो से रहित है।

नित्यश्च न्यूनाधिकताविहीनो, ह्यसंशयोऽनध्यवसायदूरः।
सदा विजेयोऽविपरीतभावो, जातो ध्वनिर्धर्मजिनस्य तस्य ॥६॥

अर्थ—उन भगवान् धर्मनाथ की दिव्यध्वनि नित्य है, न्यूनता और अधिकता से रहित हैं, संशय रहित है, अनध्यवसाय से सर्वथा भिन्न है, वह किसी से जीती नहीं जा सकती और विपरीत भावो से सदा रहित है।

एकान्ततत्त्वं सुनयप्रमाणैर्विचूर्णयन् नाथ महाप्रभावः ।
परोक्षप्रत्यक्षविरोधहीनो, दिव्यध्वनिर्धर्मजिनस्य जातः ॥ ७ ॥

अर्थ—हे नाथ धर्मनाथ भगवन् ! आप की जो दिव्यध्वनि हुई थी वह नय और प्रमाणों के द्वारा तत्त्वों के एकान्त स्वरूप को चूर्ण करने वाली थी, महा प्रभाव को धारण करने वाली थी और प्रत्यक्ष तथा परोक्ष के विरोध से रहित थी।

तीर्थेश्वरस्याजनि यः सभायां, श्रीधर्मनाथस्य च लोकभर्तुः ।
दिव्यध्वनिः सः सुखदः स जीयात्, ज्ञानप्रदानेन च पातु नोऽत्र ।८।

अर्थ—समवसरण सभा में तीनों लोकों के स्वामी तीर्थंकर परम देव भगवान् धर्मनाथ की समस्त जीवों को सुख देने वाली जो दिव्यध्वनि प्रकट हुई थी वह सदा चिरंजीव रहे और सम्यग्ज्ञान का दान देकर इस संसार में मेरी रक्षा करे।

मार्गस्त्वहिंसात्मक एव सत्यः, सावद्यकर्मत्यजनाद्भवेत्सः ।
कल्याणभाजा भवताऽभ्यधायि, तस्मात्त्वमेवासि सुधर्मनाथः ॥९॥

अर्थ—इस संसार में मोक्ष का मार्ग एक अहिंसात्मक ही है और वही सत्य है। तथा वह अहिंसात्मक मोक्ष मार्ग पाप रूप कर्मों के त्याग करने से ही प्राप्त होता है। ऐसा वह यथार्थ मोक्ष मार्ग समस्त जीवों का कल्याण करने वाले आप ने ही निरूपण किया है। इसी लिये हे धर्मनाथ भगवन् ! यथार्थ धर्मनाथ आप ही है।

आरंभतृष्णाविषयाद्यभावात्, परिग्रहाशादिकषायनाशात् ।
धर्मोऽप्यहिंसात्ममयस्ततःस्यात्तस्य प्रणेता भगवान् सुधर्मः ।१०।

अर्थ--इस संसार में धर्म का स्वरूप अहिंसात्मक है और यह अहिंसात्मक धर्म आरंभ तृष्णा-इन्द्रियों के विषय आदि का अभाव होने से प्रगट होता है तथा परिग्रह-आशा आदि कषायों के नाश होने से होता है; ऐसे अहिंसामय धर्म का स्वरूप भगवान् सुधर्मनाथ ने ही निरूपण किया है।

धर्मस्य नेता भुवि धर्मकर्ता, ह्यधर्महर्ता शुभधर्मदाता।
प्रोक्तो हि दिव्यध्वनिना स धर्मः, श्रीधर्मनाथेन जिनेन लोके।११।

अर्थ—यह अहिंसारूप धर्म समस्त धर्मों का नेता है, संसार भर में धर्म को प्रगट करने वाला है, अधर्म का नाश करने वाला है और श्रेष्ठ धर्म को प्रदान करने वाला है; ऐसा यह धर्म इस संसार में भगवान् धर्मनाथ ने अपनी दिव्यध्वनि के द्वारा निरूपण किया है।

नमो हि दिव्यध्वनिधर्मकर्त्रे, नमो हि रत्नत्रयदानकर्त्रे।
नमो नमो प्राणिसुबोधदात्रे, नमो नमो धर्मजिनेश भर्त्रे।१२।

अर्थ—हे धर्मनाथ जिनेन्द्र देव ! आप दिव्यध्वनि के द्वारा धर्म को प्रगट करने वाले हैं, इस लिये आप को नमस्कार हो। आप रत्नत्रय का दान देने वाले हैं, इस लिये आप को नमस्कार हो। आप प्राणियों को श्रेष्ठ ज्ञान देने वाले हैं इस लिये आप को नमस्कार हो। हे स्वामिन् ! आप सबके स्वामी हैं, इस लिये आप को बार बार नमस्कार हो।

भगवान् शान्तिनाथ की स्तुति

[अष्ट-प्रातिहार्यवर्णन-गर्भित]

सत्प्रातिहार्यातिशयैः सभायां, त्रिलोकसम्राट् च बभूव योगी।
देवैः सदा पूजितपादपद्मः, श्रीशान्तितीर्थो जिनचक्रवर्ती ॥१॥

अर्थ—भगवान् शान्तिनाथ तीर्थंकर भी थे और चक्रवर्ती भी थे, तथा योगियों के स्वामी भी; इसी लिये समस्त देव सदा उन के चरण-कमलों की पूजा किया करते थे। ऐसे वे भगवान् शान्तिनाथ अपनी समवसरण सभा में आठ प्रातिहार्य और चौंतीस अतिशयों से तीनों लोकों के सम्राट् बन गये थे।

श्रेष्ठां विशोकां च यदीयशान्तिं, विलोक्य वृक्षोऽपि जहार शोकम्।
आसीदशोको भुवि सर्वपूज्यः, श्रीशान्तिनाथः स हरेच्च शोकम् ।२।

अर्थ—जिन शान्तिनाथ भगवान् की शोक रहित सर्व श्रेष्ठ शांति को देखकर वृक्ष ने भी अपना शोक छोड दिया था तथा वह इस संसार में सर्व-पूज्य अशोक वृक्ष हो गया था, ऐसे वे शांतिनाथ भगवान् मेरा भी शोक दूर करे।

राजत्यसौ पुष्पसमूहवृष्टिः, दिव्या तवाग्रे सुरभीकृताशा ।
सौरभ्यशान्तिं लभमान बुद्ध्या, शान्तेः क्रमाब्जं शरणं व्रजामि ।३।

अर्थ—हे भगवन् शान्तिनाथ स्वामिन् ! जो यह पुष्पों के समूह की वर्षा आप के सामने सुशोभित हो रही है वह आप के

शरीर से सुगंधि और शांति को प्राप्त करने की इच्छा से ही सुशोभित हो रही है। वह पुष्पो की वर्षा देवो के द्वारा की जा रही है और समस्त दिशाओं को भी सुगंधित कर रही है। हे शांतिनाथ भगवन्! ऐसे आप के चरण-कमलो की मै शरण लेता हूँ।

आस्यादियत्नेन विना विवर्णः, व्यनक्ति वर्णैः शिवशान्तिमार्गम्।
श्रीशांतिनाथस्य महाध्वनिः स्याच्छांतिप्रदः शांतिकरश्च भूयात्।

अर्थ—भगवान् श्रीशांतिनाथ की महादिव्यध्वनि वर्ण रहित है और कंठ-तालु आदि उच्चारण-स्थानो के प्रयत्न के विना ही प्रगट होती है। वह दिव्यध्वनि वर्ण रूप हो कर शांति और मोक्ष के मार्ग को प्रगट करती है। ऐसे वे शान्ति नाथ भगवान् मेरे लिये भी शाँति देने वाले और शान्ति उत्पन्न करने वाले हों।

शुभ्राणि चंचच्चमरीरुहाणि, प्रवीज्यमानानि विभान्ति तत्र।
शान्त्यर्थिनां शांतिकराणि यस्य, तं शांतिनाथं शरणं व्रजामि।५।

अर्थ—समवसरण सभा मे जिन के ऊपर शांति चाहने वाले लोगों के लिये शांति उत्पन्न करने वाले अत्यन्त सफेद और चमकते हुये चमर ढुलाये जा रहे हैं, जिन के वे चमर बहुत ही अच्छे शोभायमान हो रहे है; ऐसे शांतिनाथ भगवान् की मैं शरण लेता हूँ।

त्वमेव साक्षान्ननु कामदेवः, कामेभभेत्ता हरिणाधिनाथः।
सिंहासनं तेन धृतं हरीशैस्तं यस्य शान्तिं शिरसा नमामि॥६॥

अर्थ—हे भगवन् ! निश्चय से आप साक्षात् कामदेव हैं तथा कामदेव होकर भी कामदेवरूपी हाथी को भेदन करने वाले हरिणों के स्वामी सिंह हैं अथवा हरिण के चिह्न को धारण करने वाले हरिणाधिनाथ है। हे नाथ ! इसीलिये आप के सिंहासन को हरिणाधिनाथ वा सिंह धारण करते हैं. ऐसे अपूर्व शांतिनाथ भगवान् को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

दृक्पूतयक्षेण धृतं यदीयं, प्रचण्डमार्तंडविभाहरन्तम् ।
भामण्डलं सप्तभवप्रदर्शं, तं शांतिनाथं शिरसा नमामि ॥७॥

अर्थ—अत्यन्त प्रचंड सूर्य की काति को हरण करने वाले और प्रत्येक जीव के सात भवों से सुशोभित ऐसे जिन के भामंडल को शुद्ध सम्यग्दर्शन को धारण करने वाले यक्ष धारण करते हैं, ऐसे उन शातिनाथ भगवान् को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

यक्षैर्धृता दुन्दुभयः प्रणेदुः, इतो भवेयुश्च जनाः प्रशान्ताः ।
श्रीशान्तिनाथस्य पदप्रभावात्तं शान्तिनाथं शरणं व्रजामि । ८ ।

अर्थ—हे भगवन् ! भगवान् शातिनाथ के चरण-कमल के प्रसाद से यहा आने वाले लोग अत्यन्त शांत हो जाते हैं, इसी बात को कहने वाली और यक्षों के द्वारा धारण की हुई जिन की दुन्दुभियां बज रही हैं, ऐसे उन शातिनाथ की मैं शरण जाता हूँ।

छत्रत्रयं तापहरं मनोज्ञं, शांतिप्रद शांतिकरं विशालम् ।
शान्तीश ! मूर्ध्नि प्रविराजते तच्छान्ति विधातुं हि जगत्त्रयस्य ।९।

अर्थ— हे भगवन् शांतिनाथ स्वामिन्! आप के मस्तक पर जो छत्रत्रय शोभायमान हो रहा है, वह संसार के संताप को दूर करने वाला है, मनोहर है, शांति को देने वाला है, शांति उत्पन्न करने वाला है और अत्यन्त विशाल है, तथा वह छत्रत्रय ऐसा शोभायमान होरहा है मानो तीनों लोकों मे शांति स्थापन करना चाहता हो।

शान्ति सदा शान्तिकरो जिनेशः, शान्तेर्विधाता भुवि दुःखहर्ता।
शान्त्यर्थिनां शांतिजिनो प्रदद्यात्, श्रीशांतिनाथो जिनशांतिचंद्रः

अर्थ—भगवान् जिनेन्द्रदेव शांतिनाथ सदा शांति करने वाले हैं, जिनेश हैं, शांति के विधाता हैं, दुखों के हरण करने वाले हैं, शांति स्वरूप हैं, शांति उत्पन्न करने वाले चन्द्र हैं; ऐसे वे शांति नाथ भगवान् शांति चाहने वाले जीवों को सदा के लिये शांति प्रदान करें।

भवाब्धितः कोपि न पारकर्ता, कामाग्नितापादिह शांतिदाता।
त्वमेक एवासि स शांतिनाथः, शांतिप्रदाता भवपारकर्ता ॥११॥

अर्थ—हे भगवन्! इस संसार रूपी समुद्र से पार करने वाला आप के सिवाय अन्य कोई नहीं है, और न कोई काम रूपी अग्नि के संताप से शांति प्रदान करने वाला है। हे प्रभो! शांति नाथ! इस संसार मे आप एक ही शांति प्रदान करने वाले हैं और आप ही संसार से पार कर देने वाले हैं।

तुभ्यं नमः शांतिकराय धीमन्! तुभ्यं नमः सत्त्वहितंकराय।
तुभ्यं नमः संसृतिपारकाय, श्रीशांतिनाथाय नमोस्तु तुभ्यम् ॥१२

अर्थ—हे धीमन् ! आप शाति उत्पन्न करने वाले हैं, इसलिये आपको नमस्कार करता हू । आप समस्त जीवों का हित करने वाले हैं, इसलिये मैं आप को नमस्कार करता हूँ, आप संसार से पार करने वाले हैं, इसलिये मै आप को नमस्कार करता हूँ; हे शान्तिनाथ भगवन् ! मैं आप के लिये वार वार नमस्कार करता हूँ ।

भगवान् कुंथुनाथ की स्तुति

[अष्टमंगलवर्णन-गर्भित]

सन्मंगलैश्चाष्टगणैः सुभव्यैर्देवीधृतैस्तैश्च सदोदितैश्च ।
विराजते यो भगवान् त्रिलोके, श्रीकुंथुनाथो भुवनाधिनाथः ॥१॥

अर्थ—तीनो लोकों के स्वामी भगवान् कुंथुनाथ जिनेन्द्र देव, देवियो के द्वारा धारण किये हुए और जिन का उदय सदा बना रहता है और जो अत्यन्त मनोहर हैं, ऐसे आठ मंगल द्रव्यो से तीनो लोकों में शोभायमान हो रहे हैं ।

दृक्शालिनीभिः सुरदेवताभिः, समुद्धृतं मंगलमष्टद्रव्यम् ।
रेजे महामंगलदायकस्य, श्रीकुंथुनाथस्य महेश्वरस्य ॥२॥

अर्थ—महा मंगल देने वाले और सर्वोत्तम भगवान् कुंथुनाथ के सम्यग्दर्शन से सुशोभित देवियो के द्वारा धारण किये हुए आठ मंगल द्रव्य बहुत ही अच्छे शोभायमान हो रहे थे ।

मांगल्यरूपः शुभसूचकोसौ, पत्रप्रसूनैश्च समर्चितो यः ।
श्रीशातकुंभस्य च दीप्तकुंभः, श्रीकुंथुनाथस्य रराज पार्श्वे ॥३॥

अर्थ—सुवर्ण के समान शरीर की शोभा को धारण करने वाले भगवान् कुंथुनाथ के समीप में मंगल को बढ़ाने वाला, शुभ को सूचित करने वाला तथा पत्र-पुष्प आदि से पूज्य ऐसा सुवर्ण का

बना हुआ देदीप्यमान घट बहुत ही अच्छा शोभायमान हो रहा था।

विनिर्मिता कांचनरत्नकैर्या, नाम्नैव 'झारी' ति सुधाझरी च।
समर्चिता गंधप्रसूनपत्रैः, श्रीकुंथुनाथस्य रराज पार्श्वे ॥४॥

अर्थ—भगवन् कुंथुनाथ के समीप में सुवर्ण तथा रत्न से बनी हुई, जिस से अमृत झर रहा है और गंध-पुष्प-पत्र आदि से जिसकी पूजा हो चुकी है, ऐसी झारी[1] बहुत ही अच्छी शोभायमान हो रही थी।

विश्वप्रकाशी शिवपांथकानामादर्शकः संयमसाधकानाम्।
देवीधृतो दर्पणमंगलोसौ, श्रीकुंथुनाथस्य रराज पार्श्वे ॥५॥

अर्थ—जो जीव मोक्ष मार्ग में चल रहे हैं, उन के लिये जो संसार भर के समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाला है तथा जो जीव संयम को सिद्ध करने वाले हैं उन के लिये जो आदर्श रूप है और जिसे देविया धारण कर रही हैं, ऐसा दर्पण नाम का मंगलद्रव्य भगवान् कुंथुनाथ के समीप बहुत ही अच्छा शोभायमान हो रहा था।

यः स्वस्तिकर्ता शुभकार्यकेषु, स्वस्तिप्रदाता भुवि धार्मिकाणाम्।
स्वस्तिक्रियात्स्वस्तिकमंगलोसौ, श्रीकुंथुनाथस्य जिनेश्वरस्य॥६॥

अर्थ—श्रीजिनेन्द्र देव भगवान् कुंथुनाथ का स्वस्तिक (सांथिया) नाम को मंगल द्रव्य संसार के समस्त शुभ कार्यों में

१—इसी को भृङ्गार कहते हैं।

कल्याण करने वाला है और धर्मात्माओं को कल्याण देने वाला है; ऐसा वह स्वस्तिक नाम का मंगल द्रव्य सब जीवो का कल्याण करो।

सम्यग्धृतासौ सुरदेवताभिरिन्दोः कलाराजिरिवातिगौरा।
श्रेणिर्ध्वजानां शुभमंगलाढ्या, श्रीकुंथुनाथस्य रराज पार्श्वे ॥७॥

अर्थ—जो ध्वजाओं की पंक्तियां शुभ मंगल रूप है, जिन्हें देवो की देवियां अपने मस्तक पर धारण कर रही हैं, जो अत्यन्त सफेद हैं और चन्द्रमा की कलाओ के समूह के समान जान पड़ती हैं; ऐसी ध्वजाओ की पंक्तियां भगवान् कुंथुनाथ के समीप बहुत ही अच्छी शोभायमान हो रही थी।

त्रिलोकसाम्राज्यसुसूचकं हि, छत्रत्रयं मंगलदायकं च।
देवीधृतं मंगलवस्तुरूपं, श्रीकुंथुनाथस्य रराज पार्श्वे ॥८॥

अर्थ—जो छत्रत्रय तीनो लोको के साम्राज्य को सूचित करने वाले हैं, जो मांगलिक द्रव्य स्वरूप हैं और देवियां जिन्हे अपने हाथो पर धारण कर रही हैं, ऐसे वे छत्रत्रय भगवान् कुंथुनाथ के समीप बहुत ही अच्छे शोभायमान होते थे।

सच्चामरं तच्चमरीप्रजन्यं, शुभं महामंगलकं हि नित्यम्।
देवीधृतं मंगलवस्तुभूतं, श्रीकुंथुनाथस्य रराज पार्श्वे ॥९॥

अर्थ—जो चमर चमरी गाय से प्रगट हुये हैं, जो शुभ हैं, महामंगल उत्पन्न करने वाले हैं, जिन्हे देवियां धारण कर रही हैं और सदा ही मांगलिक वस्तु स्वरूप हैं; ऐसे चमर भगवान् कुंथुनाथ के समीप बहुत ही अच्छे शोभायमान हो रहे थे।

यद्व्यंजकं मोक्षपथस्य नित्यं, देवीधृतं मगलदं सुभव्यम् ।
नाम्ना प्रसिद्धं भुवि व्यंजनं च, श्रीकुंथुनाथस्य रराज पार्श्वे ॥१०॥

अर्थ—जो तालवृंत पंखा मोक्षमार्ग को सूचित करने वाला है, देविया जिसे धारण कर रही हैं, जो मंगल देने वाला है, जो वहुत ही सुन्दर है और संसार मे जो व्यंजन वा वीजना के नाम से प्रसिद्ध है; ऐसा तालवृंत नाम का मंगलद्रव्य भगवान् कुंथुनाथ के समीप वहुत सुन्दर शाभायमान हो रहा था।

तं मंगलाधीशमहीशवन्द्यं, महीशवन्द्यं जिनकुंथुनाथम् ।
अनाथनाथं जगदेकनाथं, स्मरामि वन्दे च जपामि भक्त्या ॥११॥

अर्थ—जो जिनेन्द्रदेव कुथुनाथ भगवान् समस्त मंगलो के स्वामी हैं, धरणेन्द्र के द्वारा वन्दनीय हैं, चक्रवर्ती आदि महा-राजाओं के द्वारा वन्दनीय हैं, अनाथों के नाथ हैं और ससार भर के एक नाथ हैं, ऐसे भगवान् कुंथुनाथ का मैं स्मरण करता हूँ, बडी भक्ति से उन की वंदना करता हूँ और भक्तिपूर्वक ही उनका जप करता हूँ।

भगवान् अरनाथ की स्तुति

[तत्त्व-गर्भित]

द्रव्यं पदार्थाः नव सप्त तत्त्वं, पंचास्तिकाया गतिकालभेदाः ।
परोक्षप्रत्यक्षविरोधहीनाः, तेष्यत्र चोक्ता अरनाथदेवैः ॥१॥

अर्थ—जिन मे प्रत्यक्ष वा परोक्ष से कोई किसी प्रकार का विरोध नहीं आता ऐसे छह द्रव्य, नौ पदार्थ, सात तत्त्व, पांच अस्तिकाय, गति और काल के भेद आदि सब इस भरत क्षेत्र में भगवान् अरनाथ तीर्थङ्कर ने निरूपण किये हैं ।

सल्लक्षणं द्रव्यमनेकमेकं, विधेर्निषेधात्सदसत्स्वरूपम् ।
नित्यं ह्यनित्यं ध्वनिनाभ्यधायि, येनारनाथेन च तं नमामि ॥२॥

अर्थ—द्रव्य का लक्षण सत् है। जिसमे उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य तीनो एक साथ हो उस को सत् कहते हैं। वह द्रव्य एक है, अनेक है, विधि रूप से सत् है, निषेध रूप से असत् रूप है, तथा वही द्रव्य नित्य भी है और अनित्य भी है। जिन भगवान् अरनाथ ने अपनी दिव्य ध्वनि के द्वारा द्रव्यों का ऐसा यथार्थ निरूपण किया है; ऐसे भगवान् अरनाथ को मैं नमस्कार करता हूँ।

भिन्नं ह्यभिन्नं च चलाचलं, तदकर्तृभूतं च सकर्तृकं च ।
येनारनाथेन जिनेन चोक्तं, सर्वज्ञनाथं तमहं नमामि ॥३॥

अर्थ—जिन अरनाथ भगवान् ने जीवादिक पदार्थों का स्वरूप भिन्न अभिन्न बतलाया है, चल अचल बतलाया है और कृत्रिम वा अकृत्रिम बतलाया है, ऐसे सर्वज्ञ देव भगवान् अरनाथ को मैं नमस्कार करता हूँ।

भावात्मकं द्रव्यमभावरूपं, ध्रौव्यं समुत्पादविनाशयुक्तम्।
येनारनाथेन ह्यवादिशुद्धं, सर्वज्ञमीशं तमहं नमामि ॥४॥

अर्थ—जिन 'अरनाथ भगवान ने द्रव्यों का स्वरूप भावात्मक तथा अभावात्मक निरूपण किया है, तथा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य सहित निरूपण किया है; ऐसे सर्वोत्तम सब के स्वामी वीतराग विशुद्ध सर्वज्ञ देव भगवान् अरनाथ को मैं नमस्कार करता हूँ।

द्रव्यं हि पर्यायगुणात्मकं वा, द्रव्यं पृथग्नास्ति यतो हि ताभ्याम्।
नित्यं ह्यनित्यं कथितं च तस्माद्येनारनाथेन च तं नमामि ॥५॥

अर्थ—द्रव्य का स्वरूप गुण-पर्यायात्मक है, क्योंकि कोई भी द्रव्य गुण पर्याय से पृथक् नहीं है, इस लिये भगवान् अरनाथ ने द्रव्यों का स्वरूप नित्य और अनित्य उभय रूप बतलाया है। गुणात्मक होने से नित्य है और पर्यायात्मक होने से अनित्य है, ऐसे उन अरनाथ भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ।

द्रव्याद्गुणाः सन्ति न भिन्नरूपाः, द्रव्यं गुणानां समुदाय एव।
तथापि भिन्ना इह लक्षणेन, द्रव्यं प्रणीतं हि जिनेन तेन ॥६॥

अर्थ—गुण द्रव्यों से भिन्न नहीं है क्योंकि गुणों का समुदाय ही द्रव्य है। तथापि दोनों के लक्षण अलग-अलग होने से द्रव्य और गुण दोनों ही भिन्न-भिन्न हैं। भगवान् अरनाथ ने द्रव्यों का ऐसा ही विलक्षण स्वरूप बतलाया है।

निर्णीतरूपं च विरोधहीनं, सल्लक्षणं द्रव्यमवादि चेत्थम् ।
स्याद्वादसूर्यैररनाथदेवैरनाद्यनन्तं स्वत एव सिद्धम् ॥७॥

अर्थ—द्रव्यों का स्वरूप सुनिश्चित है, विरोध रहित है, उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य ही उस का लक्षण है, अनादि है, अनंत है और स्वयंसिद्ध है; इस प्रकार का यह द्रव्यों का स्वरूप स्याद्वाद-विद्या के सूर्य भगवान् अरनाथ तीर्थङ्कर ने निरूपण किया है ।

कर्मप्रबद्धो ह्युत कर्महीनः, कर्ता प्रभोक्ता ह्युपयोगरूपः ।
शुद्धोऽप्यशुद्धो ननु मूर्तिहीनः, देहप्रमाणः कथितो हि जीवः ॥८॥

अर्थ—भगवान् अरनाथ ने जीव का स्वरूप कर्मों से बंधा हुआ, कर्म रहित, कर्ता, भोक्ता, उपयोग रूप, शुद्ध, अशुद्ध, अमूर्त और देह के प्रमाण बतलाया है ।

अकर्तृभूतं क्षणिकं च नित्यमेकान्ततो नास्ति तदेकरूपम् ।
विकल्पहीनं सविकल्पकं च, तदर्पितानर्पिततो हि सिद्धम् ॥९॥

अर्थ—भगवान् अरनाथ ने द्रव्यों का स्वरूप कर्तृत्व रहित, क्षणिक और नित्य बतलाया है । उस का स्वरूप किसी एक नय की अपेक्षा से एक रूप नहीं है । वह विकल्प रहित है और विकल्प सहित है । द्रव्यों का यह ऐसा स्वरूप मुख्यता और गौणता से सिद्ध होता है । यथा गुणों की अपेक्षा से नित्य है पर्यायों की मुख्यता से क्षणिक है । गुण-पर्यायों की भिन्नता से सविकल्पक है और अभिन्नता से विकल्प रहित है ।

सर्वज्ञतीर्थैररनाथदेवैरेवं सुतत्त्वं कथितं सुगूढम्।
कल्याणकारी स च पूज्यपादः,दद्यात्सु धर्मं[1] शिवनन्दनं माम्।१०

अर्थ—तीर्थङ्कार परमदेव भगवान् अरनाथ ने तत्त्वो का स्वरूप इस प्रकार अत्यन्त गूढ निरूपण किया है इस के सिवाय वे भगवान् अरनाथ स्वामी सब का कल्याण करनेवाले है और सब लोग उन के चरण कमलो की पूजा करते हैं ऐसे वे अरनाथ भगवान् मुझे श्रेष्ठ धर्म प्रदान करें।

१—यह स्तुति मुनि राज सुधर्मसागर जी की बनाई हुई है तथा उन का गृहस्थावस्था का नाम श्री० पं० नन्दनलाल जी शास्त्री था; ये दोनों ही नाम इस श्लोक मे उन्होने रख दिये है।

भगवान् मल्लिनाथ की स्तुति

[स्नपन-पूजातिशय-गर्भित]

यो मेरु शृंगे स्नपितोतिभक्त्या, क्षीरैश्च नीरैश्च सुगंधगंधैः ।
गंधोदकैर्वा सुरदेवदेवैस्तं मल्लिनाथं प्रणमामि नित्यम् ॥१॥

अर्थ—देवों के स्वामी इन्द्रों ने बड़ी भक्ति से जिन मल्लिनाथ भगवान् का अभिषेक क्षीरसागर के जल से तथा अत्यंत सुगंधित गंधोदक से मेरु पर्वत के शिखर पर किया था, ऐसे भगवान् मल्लिनाथ को मैं सदा नमस्कार करता हूँ।

तमद्यजातं भुवि मल्लिनाथं, मत्वेति स्वं कल्प्य च शक्र रूपम् ।
मेरुप्रभे स्थाप्य च वेदिपीठे, बिम्बं यदीयं शुभभावभक्त्या ॥२॥

अर्थ—भगवान् मल्लिनाथ इस संसार में आज ही उत्पन्न हुये हैं, यही मान कर तथा अपने आप को इन्द्र रूप कल्पना कर निर्मल परिणामों से होने वाली भक्ति से ही मेरु पर्वत के समान वेदी के सिंहासन पर भगवान् मल्लिनाथ के प्रतिबिम्ब को विराजमान करना चाहिये।

प्रस्तावनादौ च पुरा सुकर्म, न्यासः पुनः शासनदेवतानाम् ।
स्वदेहशुद्ध्यै सकलीक्रिया च, भक्त्या विधेया जिनवेदिपीठे ॥३॥

अर्थ—जिस वेदी पर भगवान् विराजमान किये हैं उसी वेदी पर सब से पहले प्रस्तावना फिर पुराकर्म और फिर शासन-देव-

-त्ताओं का स्थापन करना चाहिये तथा शरीर की शुद्धि के लिये सकलीकरण करना चाहिये; ये सब कार्य भक्तिपूर्वक करने चाहिये।

नीरैश्च पंचामृतकैर्विशुद्धैः, दृक्पूतभव्यो हि सदारकोऽत्र।
स्नानं करोतीह तदीयमूर्तेः, धन्यः प्रतापी भुवि पुण्यवान् सः ।४।

अर्थ—शुद्ध सम्यग्दर्शन को धारण करने वाला जो भव्य अपनी धर्मपत्नी सहित भगवान् मल्लिनाथ की मूर्त्ति का जल से तथा विशुद्ध पंचामृत से अभिषेक करता है, वह पुरुष इस संसार मे धन्य, प्रतापी और पुण्यवान् समझा जाता है।

श्रीमल्लिनाथस्य महेश्वरस्य, यः पादपद्मं यजतीह भक्त्या।
पुष्पैर्वरैर्गंधविलेपनेन, धन्योस्ति मान्यः स च मोक्षलिप्सुः॥५॥

अर्थ—भगवान् मल्लिनाथ स्वामी सर्वोत्तम देव हैं। जो पुरुष-श्रेष्ठ पुष्पो से तथा गंध का विलेपन कर के भक्ति पूर्वक भगवान् मल्लिनाथ के चरण-कमलों की पूजा करता है, वही पुरुष इस संसार में धन्य गिना जाता है, मान्य माना जाता है और मोक्ष की इच्छा वाला समझा जाता है।

भक्तिश्च पूजा तव दुर्लभा सा, कर्तुं समर्थो न च देवराजः।
शक्त्या सुभक्त्या भुवि यः करोति, संसारपारं स उपैति भव्यः॥६॥

अर्थ—हे भगवन्! इस संसार में आप की भक्ति और आप की पूजा अत्यन्त दुर्लभ है। महाशक्ति को धारण करने वाला इन्द्र भी आप की भक्ति और पूजा करने में समर्थ नहीं है। हे नाथ! जो पुरुष अपनी शक्ति के अनुसार भक्ति पूर्वक आप की भक्ति और पूजा करता है, वह भव्य पुरुष इस संसार से अवश्य ही पार हो जाता है।

पूजाकथायाः महिमास्ति दूरा, स्वर्गापवर्गस्य सुखस्य दातुः ।
नामापि ते संसृतितो विमुक्तिं,करोति शीघ्रं भुवि मल्लिनाथ ॥७

अर्थ—हे मल्लिनाथ भगवन् ! आप की पूजा वा कथा स्वर्ग-मोक्ष के सुख देने वाली है, ऐसी आपकी पूजा वा कथा की महिमा तो दूर ही रहो, केवल आप का नाम लेने से ही इस संसार में यह जीव जन्म-मरण रूप संसार से बहुत शीघ्र मुक्त हो जाता है।

दृष्टा मया नाथ समस्तदेवा, अज्ञा विरूपाश्च हरादयस्ते ।
तेषां हि पूजा भवतो हि पारं,करोति किं वा शतकल्पकाले ॥८॥

अर्थ—हे नाथ ! मैंने अज्ञानी और विरूपता को धारण करने वाले हरि-हरादिक समस्त देव देख डाले हैं। हे प्रभो! सैकड़ो कल्प-काल मे भी क्या उन की पूजा से यह जीव संसार से पार हो सकता है ? कभी नहीं।

तस्मात्त्वमेकोऽसि चि मल्लनाथो, दोषैर्विमुक्तश्च हरीशपूज्यः ।
सर्वज्ञदेवोऽखिलकर्मभेत्ता, नरेशवंद्यो शिवमार्गवक्ता ॥९॥

अर्थ—इस लिये हे मल्लिनाथ भगवन् ! इस संसार में आप ही एक देव हैं, आप ही समस्त कर्मों को नाश करने वाले हैं, मोक्ष-मार्ग का उपदेश देने वाले हैं, इन्द्रों के द्वारा पूज्य हैं और चक्रवर्ती आदि राजाओं के द्वारा पूज्य हैं।

नान्या गतिस्त्वां प्रविहाय येऽद्य, सद्यस्तरीतुं भुजतो भवाब्धिम् ।
तस्मात्प्रभूयाच्छरणं त्वमेकः, श्रीमल्लिनाथः शिवदः शरण्यः ॥१०

अर्थ—हे श्री मल्लिनाथ भगवन ! आप मोक्ष देने वाले हैं और सब के शरण भूत हैं, तथा मैं अपनी भुजाओं से ही शीघ्रता के साथ इस संसाररूपी समुद्र को पार करना चाहता हूँ, अतएव आज मेरे लिये आप को छोड़ कर और कोई गति नहीं है। इस लिये हे नाथ ! आप ही मेरे लिये शरण देने वाले हूजिये।

निःशल्यरूपो जगदेकमल्लः, प्रसन्नभावः कमनीयकायः ।
शान्तोपि मोहारिसुमर्दकश्च, तं मल्लिनाथं शरणं व्रजामि ॥११

अर्थ—जो मल्लिनाथ भगवान् शल्य रहित हैं, संसार भर के एक मात्र मल्ल है, जिन के परिणाम सदा निर्मल रहते हैं, जिन का शरीर अत्यन्त सुन्दर है और जो अत्यन्त शान्त होकर भी मोह-रूपी शत्रु को मर्दन करने वाले हैं: ऐसे भगवान् मल्लिनाथ की मैं शरण लेता हूँ।

भगवान् मुनिसुव्रतनाथ की स्तुति
[व्रतवर्णन गर्भित]
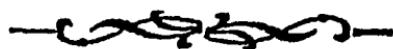
व्रतैः पवित्रीकृतवानसौ स्वं, संसारचक्रं नियमेन येन ।
एनश्च नष्टं भुवि कर्मचक्रं, वृतं स दद्यान्मुनिसुव्रतोसौ ॥१॥

अर्थ—भगवान् मुनि सुव्रतनाथ ने सब से पहले स्वयं व्रत धारण कर अपने आत्मा को पवित्र किया है, तदनन्तर उन्हो ने उन्हीं व्रतों के द्वारा जन्म-मरण रूप संसार चक्र का नाश किया है, समस्त पापो का नाश किया है और कर्मों के समूह का नाश किया है; ऐसे वे भगवान् मुनिसुव्रत स्वामी इस संसार मे मुझे भी व्रत प्रदान करे।

हिंसानृतस्तेयकुशीलसेवाग्रन्थोज्झनं वृत्तमिदं स आह ।
अनादिसंसार विनाशकं तत् ,वृतीशनाथो मुनिसुव्रतोसौ ॥२॥

अर्थ—समस्त व्रतो के स्वामी भगवान् मुनिसुव्रतनाथ ने हिंसा, झूठ, चोरी, कुशीलसेवन और परिग्रह इन पाँचों पापो के त्याग करने रूप पाँच व्रतो का निरूपण किया है। ये पाँचो ही व्रत अनादि काल से चले आये जन्म-मरण रूप संसार का नाश करने वाले हैं।

दृक्पूर्वकं तद्व्रतमेव साक्षात्सर्वोत्तमं कारणकं शिवस्य ।
श्रेयस्करं कर्महरं हि सद्यः, तदाह सत्यं मुनिसुव्रतोसौ ॥३॥

अर्थ—ये पाँचों ही व्रत यदि सम्यग्दर्शन पूर्वक धारण किये जायँ तो सब से उत्तम गिने जाते हैं मोक्ष के साक्षात् कारण माने जाते हैं, सब तरह का कल्याण करने वाले हैं, यथार्थ रूप हैं और शीघ्र ही कर्मों को नाश करने वाले हैं, ऐसे ये व्रत भगवान मुनि-सुव्रतनाथ ने निरूपण किये हैं।

अहिंसनं प्राणिभृतां हि नित्यं कायस्य वाचो मनसो विशुध्या ।
व्रतं पवित्रं गदितं च येन, नमाम्यहं तं मुनिसुव्रतं हि ॥४॥

अर्थ—जिन मुनिसुव्रत भगवान् ने मन-वचन-काय की विशुद्धता से सदा के लिये समस्त प्राणियों की हिंसा का त्याग करने रूप पवित्र अहिंसा व्रत का निरूपण किया है, ऐसे उन मुनिसुव्रतनाथ भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ।

सत्त्वानुकम्पाव्रतमुत्तमं तद्, दयार्द्रभावं करुणापरं च ।
क्षमाकरंजीव गणेषु नित्यंह्युवाच देवो मुनिसुव्रतो सौ ॥५॥

अर्थ—समस्त जीवों पर दया करना सब से उत्तम व्रत है। वह दया रूप व्रत दया से भीगे हुए परिणामों से भरा हुआ है, करुणा से भरपूर है और समस्त जीवों पर क्षमा धारण कराने वाला है, ऐसा यह दया रूप व्रत भगवान् मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्र देव ने निरूपण किया है।

सर्वेषु जीवेषु ह्यनन्यभावात्साम्यप्रदं स्यात्समता व्रतं तत् ।
दुर्भावहीनं करुणाकरं स, उवाच देवो मुनिसुव्रतोऽसौ ॥ ६ ॥

अर्थ—भगवान् मुनिसुव्रतनाथ ने समता व्रत का भी निरूपण किया है। समस्त जीवों को अपने समान मानना समता व्रत है। यह समता व्रत परिणामों में शान्तिता उत्पन्न करने वाला है, करुणा प्रकट करने वाला है और अशुभ परिणामों से सदा दूर रहने वाला है।

प्रोक्तं वृतं संयमकं विशुद्धं ब्रह्मव्रतं सौख्यकरं पवित्रम् ।
नैर्ग्रन्थ्यरूपं च तपो वृतं तत्, वृतेशिना श्री मुनिसुव्रतेन ॥७॥

अर्थ—समस्त व्रतों के स्वामी भगवान् मुनिसुव्रतनाथ ने परम विशुद्ध संयम व्रत का निरूपण किया है अत्यन्त पवित्र और सुख देने वाले ब्रह्मचर्य व्रत का निरूपण किया है तथा परिग्रह रहित नग्न अवस्था को धारण करने वाले तपश्चरण रूप व्रत का निरूपण किया है।

सत्यं हि विश्वासकरं च वृत्तमचौर्य वृत्तं सुखदायकं तत् ।
व्रतं हि ते नाथ! मतं पवित्रं, प्रोक्तं व्रतीशेन च तं नमामि॥८॥

अर्थ—व्रतों के स्वामी भगवान् मुनिसुव्रतनाथ ने विश्वास उत्पन्न करने वाले सत्यव्रत का निरूपण किया है। सुख देने वाले अचौर्य व्रत का निरूपण किया है। हे नाथ आपका जो परम पवित्र मत है उस को भी आप ने निरूपण किया है। हे प्रभो! ऐसे आपको मैं नमस्कार करता हूँ।

रत्नत्रयं येन महाव्रतं तत् अवादि कल्याणकरं पवित्रम् ।
व्रतं क्षमाद्यं दशधोत्तमं हि, वन्दे व्रतीशं मुनिसुव्रतं तम् ॥९॥

अर्थ—जिन मुनिसुव्रतनाथ ने समस्त जीवों का कल्याण करने वाले परम पवित्र रत्नत्रय व्रत का निरूपण किया है, महाव्रतों का निरूपण किया है तथा उत्तम क्षमा आदि दश प्रकार के उत्तम धर्म का निरूपण किया है, ऐसे व्रतों के स्वामी भगवान् मुनिसुव्रत नाथ को मैं नमस्कार करता हूँ ।

ध्यानी व्रती यःशिवमार्गनेता, योगी तपस्वी शिवदानदक्षः ।
आचारवान् चारुचरित्रवीरः, दद्याद्व्रतं श्रीमुनिसुव्रतेशः ॥१०॥

अर्थ—भगवान् मुनिसुव्रत स्वामी ध्यानी हैं, व्रती हैं, मोक्ष-मार्ग के नेता हैं, योगी हैं, तपस्वी हैं, मोक्ष प्रदान करने में अत्यन्त चतुर हैं, पंचाचार धारण करनेवाले हैं और सुन्दर निर्दोष चरित्र धारण करने में शूरवीर हैं; ऐसे श्रीमुनिसुव्रत स्वामी मुझे भी व्रत देवे ।

महाव्रतं पंच चचार चारु, ह्याचारकं पंच दधे व्रतीशः ।
पंचाक्षजेता स मुनीश वन्द्यः, वन्दे जिनेशं मुनिसुव्रतेशम् ॥ ११ ॥

अर्थ—व्रतों के स्वामी जिन मुनिसुव्रतनाथ भगवान् ने निर्मल पांचो महाव्रतो का पालन किया है । निर्मल पंचाचार पालन किये हैं, पांचों इन्द्रियों का विजय किया है और जिन्हें मुनियों के स्वामी गणधरादिक देव भी नमस्कार करते है, ऐसे जिनराज भगवान मुनिसुव्रतनाथ को मैं नमस्कार करता हूँ ।

भगवान् नमिनाथ की स्तुति
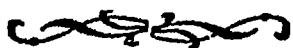
नम्रीभवन्नाकिनरेन्द्रवृन्द-मौलिप्रभाचुम्बितपादपद्मः ।
प्रणष्टकर्माष्टकलंकपंको, जीयान्नमीशो जिननाथचन्द्रः ॥ १ ॥

अर्थ—नमस्कार करते हुए अनेक इन्द्र और चक्रवर्ती आदि नरेन्द्रो के समूह के मुकटो की प्रभा से जिन के चरण-कमल स्पर्शित किये जा रहे हैं और जिन्हों ने ज्ञानावरण आदि आठों कर्म रूपो कलंक-कीचड़ नष्ट कर दी है तथा जिनेन्द्र देवो मे भी जो चन्द्रमा के समान सुशोभित हैं; ऐसे भगवान् नमिनाथ स्वामी सदा जयशील हो।

गुणैर्गरिष्ठं स्तवनं त्वदीय-मनन्यभावाद्धतो जनस्य ।
करोति पारं हि भवाब्धिमध्यादचिन्त्यनीयो हि नमेः प्रभावः ॥२॥

अर्थ—हे भगवन् ! आप का स्तवन गुणो से अत्यंत गरिष्ठ है, जो पुरुष अनन्य भावो से आप के स्तवन को अपने हृदय मे धारण करता है उस को वह आप का स्तवन इस संसार रूपी समुद्र के मध्य मे से पार कर देता है। हे नमिनाथ भगवन् ! आप का प्रभाव भी अचिन्त्यनीय है, उस को कोई चिंतवन भी नहीं कर सकता।

निर्द्रव्यको निस्पृहकोपि नाथ ! अभीष्टमर्थं सहसा ददासि।
आराधकानां त्वमिहाति सद्य, अतो नमीशाय नमामि तुभ्यम्।३।

अर्थ—हे नमिनाथ भगवन् ! आप द्रव्य रहित है और निस्पृह भी है तथापि जो आपकी आराधना करता है उसको आप शीघ्र ही उसी समय इच्छानुसार पदार्थ समर्पण कर देते हैं; ऐसे हे नमिनाथ प्रभो ! मै आप के लिये नमस्कार करता हूँ।

जन्मान्तकानां ननु नाशकर्ता, कामाग्नितापात् सततं विरक्तः।
ममापि दुःखस्य भवस्य नाशं, करोपि किं नाथ ! न हे नमीश ! ।४।

अर्थ— हे नमिनाथ भगवन् ! आप निश्चय से जन्म-मरण नाश करने वाले है और कामरूप अग्नि के संताप से सदा विरक्त हैं। हे नाथ ! आप संसार से उत्पन्न हुए मेरे दुःखो को भी क्यो नाश नही करते हो ?

त्वन्नामन्त्रं हृदये दधानः, यो मूर्च्छितो मोहविपादसाध्यः।
किं वा भवेत्को न च निर्विषश्च,नमेः प्रभावादिह किं न साध्यम्।

अर्थ—हे भगवन् ! जो पुरुष मोह रूपी विप से मूर्छित हो रहा है और जिस की असाध्य अवस्था हो रही है ऐसा कौनसा पुरुष है जो आप के नाम रूपी मंत्र को हृदय में धारण करने मात्र से निर्विष नहीं हो जाता ? अर्थात् जो पुरुष आप के नाम रूपी मंत्र को हृदय में धारण करते हैं वे अवश्य ही मोह रूपी विष से रहित होकर आत्म-स्वभाव में लीन हो जाते हैं। सो ठीक ही

है, क्योंकि भगवान् नमिनाथ के प्रभाव से क्या-क्या सिद्ध नहीं होता है ? सभी सिद्ध हो जाता है।

निःशस्त्रकस्त्वं ह्यभयस्य दाता, मोहारिजेतापि च कोपहीनः।
त्वं निर्मदो मारमदस्य हर्ता, अचिन्त्यनीया महिमा प्रभोस्ते।६।

अर्थ—हे नमिनाथ भगवन् ! आप शस्त्र रहित हैं तथापि अभय दान देने वाले है, आप क्रोध रहित है तथापि मोह रूपी शत्रु को जीतने वाले हैं, आप मद रहित हैं तथापि कामदेव के मद को हरण करने वाले है। हे प्रभो ! आप की महिमा अचिंत्य है, उसे कोई चितवन भी नहीं कर सकता।

निरक्षरागीरपि सत्यवक्ता, रागैर्विमुक्तश्च हितोपदेशी।
ब्रह्मव्रती मोक्षवधूपभोक्ता, अचिन्त्यनीया महिमा प्रभोस्ते ॥७॥

अर्थ—हे भगवन्! आप की वाणी अक्षर रहित है तथापि आप सत्यवक्ता है, आप राग-द्वेष से सर्वथा रहित है तथापि हितोपदेशी है, आप महा ब्रह्मचर्य को धारण करने वाले हैं तथापि मोक्ष रूपी स्त्री का उपभोग करते हैं। हे प्रभो ! इस प्रकार भी आप की महिमा अचित्य है।

निर्भूषणस्त्वं नमिनाथ देव !, तथापि भामंडलभूतियुक्तः।
शृंगारहीनोऽपि प्रसूनशोभी, अचिन्त्यनीया महिमा प्रभोस्ते ॥८॥

अर्थ—हे नाथ ! नमिनाथ देव ! आप आभूषण रहित हैं तथापि भामंडल की विभूति से शोभायमान है। आप शृङ्गार रहित है तथापि पुष्प-वर्षा की शोभा से शोभायमान है। हे प्रभो। इस प्रकार भी आप की महिमा अचिंत्य हैं।

दिगम्बरो काननवासयुक्तः, दैवीसभायां च विराजमानः ।
नाथोपि यस्त्यक्तसमस्तभोगः,अचिन्त्यनीयोसि नमिप्रभुस्त्वम् ।९

अर्थ—हे भगवन्! यद्यपि आप दिगम्बर हैं तथापि कानन-रूपी वस्त्रों को धारण करते हैं और दिव्य सभा में विराजमान हैं, आप सब के स्वामी हैं तथापि समस्त भोगोपभोगों के त्यागी हैं । हे नमिनाथ प्रभो! आप की महिमा सब तरह से अचि-न्त्य है ।

क्षुधाविहीनोपि चिरं च जीवी, कर्मप्रहंतापि दयालुरेव ।
अचिन्त्यशक्तिस्त्वमिहासि देव!,पूज्योसि वंद्योसि नमिप्रभुस्त्वम् १०

अर्थ—हे नाथ! आप भूख-प्यास से रहित हैं तथापि चिरंजीव हैं, कर्मों को नाश करने वाले हैं तथापि दयालु हैं । हे देव! आपकी शक्ति सर्वथा अचित्य है, इसी लिये हे नमिनाथ भगवन्! आप सब के द्वारा पूज्य हैं और सब के द्वारा वंदनीय हैं ।

———

भगवान् नेमिनाथ की स्तुति

[विश्वदेवमय-गर्भित]

शौरीपुरे जन्मकृतावतारः, शंखस्य चिह्नेन विराजमानः ।
कृष्णादि देवैश्च वलेन पूज्यः नेमीश्वरोसौ जयताज्जिनेशः ॥१

अर्थ—जिन्हो ने शौरीपुर मे जन्म लेकर अवतार धारण किया है, जो शंख के चिह्न से शोभायमान हैं और कृष्णादिक देव तथा वलभद्र जिन की पूजा करते हैं; ऐसे भगवान् नेमिनाथ जिनेन्द्रदेव सदा जयशील हो ।

वाल्यात्सदा ब्रह्मधरो व्रतीशः, भवाद्विरक्तश्च निजात्मरक्तः ।
त्यक्तप्रपंचो व्रतपंचरक्तः, नेमीश्वरोसौ जयताज्जिनेशः ॥२॥

अर्थ—जो बालक अवस्था से ही ब्रह्मचर्य को धारण करने वाले हैं, व्रतो के स्वामी है, संसार से विरक्त है, अपने आत्मा में लीन है , सब प्रकार के प्रपंचो से रहित हैं और पांचों व्रतों के पालन करने मे तत्पर है; ऐसे वे भगवान् नेमिनाथ स्वामी सदा जयशील हो ।

राजीमतीं यः प्रविहाय धीरः, दीक्षां च प्रापाम्रवने मनोज्ञे ।
यो ब्रह्मचारी च यतिस्तपस्वी, नेमीश्वरोसौ जयताज्जिनेशः ॥३

अर्थ—जिन भगवान् नेमिनाथ ने राजीमती का त्याग कर मनोहर आम्रवन में दीक्षा धारण की थी तथा जो अत्यन्त धीर वीर हैं ब्रह्मचारी हैं, यति हैं, और तपस्वी हैं, ऐसे भगवान्!' नेमिनाथ जिनेन्द्रदेव सदा जयवंत हो।

रत्नत्रयं तद्भुवि येन दत्तं, दत्तत्रयोसौ भुवनेशपूज्यः।
शिवः शिवानन्दन एष नेमिः, निर्वाणतां प्राप स ऊर्जयन्ते ॥४

अर्थ—जिन्हो ने इस संसार मे भव्य जीवों को रत्नत्रय प्रदान किया है और इसी लिये जो दत्तत्रय वा दत्तात्रय के नाम से कहे जाते हैं, जो तीनों लोको के द्वारा पूज्य है, कल्याण स्वरूप हैं तथा जो शिवादेवी के प्रिय पुत्र हैं ऐसे भगवान् नेमिनाथ स्वामी ने गिरनार पर्वत पर से मुक्त अवस्था प्राप्त की है।

यो वायुमूर्तिर्गगने विहारी, निरंजनो विश्वगतश्चिदात्मा।
दिगम्बरो विश्वजनस्य नेता, नेमीश्वरोसौ जयताज्जिनेशः ॥५

अर्थ—जो वायु की मूर्ति के समान आकाश में विहार करने वाले हैं, जो कर्म मल से रहित हैं, ज्ञान के द्वारा तीनों लोको में तथा अलोक मे व्याप्त है, शुद्ध चैतन्य स्वरूप हैं, दिगम्बर हैं, समस्त जीवो के स्वामी वा नेता हैं; ऐसे वे भगवान् नेमिनाथ जिनेन्द्रदेव सदा जयशील हों।

यो व्योममूर्तिः सकलोप्यमूर्तः, निर्लेपमायादिसमस्तदोषः।
आल्हादकारी जगदेकचन्द्रः, नेमीश्वरोसौ जयताज्जिनेशः ॥६

अर्थ—जो भगवान् आकाश के समान अमूर्त होकर भी दिव्य औदारिक शरीर से शोभायमान हैं, माया-मोह आदि समस्त

दोषों से रहित हैं, सब को आनन्द देने वाले हैं और संसार भर के एक मात्र अपूर्व चन्द्रमा हैं; ऐसे भगवान् नेमिनाथ जिनेन्द्रदेव सदा जयवंत हो।

यो वह्निमूर्तिर्ह्यचलप्रतापः, कर्मेन्धनानां ननु भस्मकर्ता।
त्रिलोकभानुर्विगतिर्विशुद्धः, नेमीश्वरोसौ जयताज्जिनेशः ॥७

अर्थ—जो भगवान् वह्निमूर्ति है और इसी लिये जिन का प्रताप अचल है तथा जो कर्म रूपी ईंधन को समूल भस्म करने वाले हैं, जो तीनों लोकों के सूर्य हैं, गतियों के परिभ्रमण से रहित हैं और अत्यन्त विशुद्ध हैं; ऐसे भगवान् नेमिनाथ जिनेन्द्र-देव सदा जयवंत हो।

क्षमाधरः पार्थिवमूर्तिरुर्वीस्त्राता जगज्जन्तुजनस्य नित्यम्।
यो विश्वबंधुर्भुवनस्य भर्ता, नेमीश्वरोसौ जयताज्जिनेशः ॥८

अर्थ—जो भगवान् नेमिनाथ स्वामी क्षमा धारण करने वाले पृथ्वी की मूर्ति के समान हैं, समस्त पृथ्वी की रक्षा करने वाले हैं, संसार के समस्त प्राणी मात्र की रक्षा करने वाले हैं, समस्त संसार के बन्धु हैं और समस्त संसार के स्वामी हैं;ऐसे भगवान् नेमिनाथ जिनेन्द्रदेव सदा जयवंत हो।

त्राता च यो जीवगणस्य बंधु-र्यज्ञेशनाथः कृतकृत्यरूपः।
सदा पवित्रः स च यज्ञमूर्ति, र्नेमीश्वरोसौ जयताज्जिनेशः ।९।

अर्थ—जो नेमिनाथ भगवान समस्त जीव मात्र की रक्षा करने वाले हैं हित करने वाले हैं सबके वन्धु हैं यज्ञ के स्वामी

हैं यज्ञ की मूर्ति है कृतकृत्य हैं सदा पवित्र हैं ऐसे भगवान नेमिनाथ स्वामी सदा जयवंत हो।

शान्तीशनाथः सलिलात्मकश्च, परं पवित्रः धुतकर्मबंधः ।
प्रक्षालकः कर्ममलस्य नित्यं, नेमीश्वरोसो जयताज्जिनेशः ॥१०

अर्थ—जो भगवान् नेमिनाथ स्वामी शान्ति के परम स्वामी हैं और इसी लिये जो जल स्वरूप कहलाते हैं, जिन्हों ने सपूर्ण कर्मबन्ध धो डाला है और इसी लिये जो परम पवित्र हैं तथा भव्य जीवो के कर्म मल को सदा प्रक्षालन करने वाले हैं, ऐसे भगवान् नेमिनाथ स्वामी सदा जयवंत हो।

ब्रह्मा महेशो हरिरीशनाथः, बुद्धो जिनो विष्णुरनन्तज्ञानः ।
एतानि नामानि तवैव सन्ति, नेमिर्यतस्त्वं भुवनस्य शास्ता ॥११

अर्थ—हे भगवन् नेमिनाथ स्वामिन्! ब्रह्मा, महादेव, हरि, ईशनाथ, बुद्ध, जिन, विष्णु और अनंतज्ञान आदि सब आप के ही नाम हैं; क्योंकि आप ही तीनो लोकों के शासक हैं।

त्वं सृष्टिकर्ता हि शिवस्य देव! त्वं पालको भव्यगणस्य नाथ!।
त्वमेव हंतासि भवस्य नित्यमतस्त्रिमूर्तिस्त्वमिहासि नेमे! ॥१२

अर्थ—हे नेमिनाथ भगवन्! आप मोक्ष की सृष्टि के करने वाले हैं। हे नाथ! भव्यों के समूह को पालन करने वाले भी आप ही हैं तथा जन्म-मरण रूप संसार का सदा नाश करने वाले भी आप ही हैं। हे नेमिनाथ भगवन्! इस प्रकार आप तीनों मूर्ति को धारण करने वाले त्रिमूर्ति है।

यो ज्ञानलक्ष्मीं च शिवस्य लक्ष्मीं,लब्ध्वोर्जयन्ते सुगिरौ च जातः।
देवेन्द्रनागेन्द्रसुधर्मवंद्यः, नेमिः प्रभुर्मंगलमातनोतु ॥१३॥

अर्थ—जो भगवान् नेमिनाथ स्वामी गिरनार नाम के श्रेष्ठ पवत पर केवलज्ञान-लक्ष्मी को तथा मोक्ष-लक्ष्मी को पाकर देवेन्द्र और नागेन्द्रो के द्वारा पूज्य हुये हैं तथा मुझ सुधर्मसागर के द्वारा पूज्य हुये हैं; ऐसे भगवान् नेमिनाथ स्वामी सदा मंगल प्रदान करें।

भगवान् पार्श्वनाथ की स्तुति

अवतार वर्णन स्तुति

गजारविन्दादिभवेषु येन, तपो गरिष्ठं च कृतं पवित्रम् ।
यो भव्यबंधुः सुपवित्रधर्मः, स पुण्यमूर्तिः कमठस्य कृत्याद ॥१

अर्थ—जिन पार्श्वनाथ भगवान् ने हाथी अरविंद आदि पहले के भवो में उत्कृष्ट और परम पवित्र तपश्चरण किया है, जो भव्य जीवों के बन्धु हैं, अत्यन्त पवित्र धर्म का निरूपण करने वाले हैं और कमठ के कृत्य के कारणो से ही जो पुण्यमूर्ति कहलाते हैं।

काशीपुरे येन कृतावतारः, यो वामदेव्यास्तनयो वभूव ।
सर्पस्य चिह्नन विराजमानः, पायादपायात्स च पार्श्वनाथः ।२

अर्थ—जिन्हों ने काशी नगर में अवतार लिया है, जो वामा-देवी के प्रिय पुत्र हैं और सर्प के चिह्न से सुशोभित हैं, ऐसे भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी पापों से मेरी रक्षा करें।

वाल्येपि यो देवगणैः प्रपूज्यो, जातस्त्रिलोकेप्यतुलप्रतापी ।
अकृष्टवीर्योपि महान् दयालुः, पायादपायात्स च पार्श्वनाथः ॥३

अर्थ—जो वालक अवस्था में भी देवों के द्वारा पूज्य हुये थे, तीनों लोकों में भी जिन का सर्वोत्तम प्रताप है और जो सर्वोत्कृष्ट

शक्ति को धारण करते हुये भी महा दयालु हैं; ऐसे भगवान पार्श्वनाथ स्वामी पापो से मेरी रक्षा करें।

मिथ्यात्वयुक्तः कमठस्य जीवैः,[१] काष्ठे महाव्यालयुगः सदग्धः।
येन प्रदत्तादिह वाक्यमात्रान्नागेन्द्रपद्मेति युगः स जातः ॥४॥

अर्थ—गाढ मिथ्यात्व से भरे हुए कमठ के जीव ने अपने जलाने की लकड़ी मे एक बड़ा सर्प का जोड़ा जला दिया था। गृहस्थ अवस्था मे भगवान् पार्श्वनाथ ने उस मरते हुए सर्प के जोड़े को अपना वचन मात्र सुनाया था, जिस से वह जोड़ा मर कर धरणेन्द्र पद्मावती का युगल हुआ था।

क्व सर्पदेहश्च नितांत हीनः, सम्यक्त्वसम्पत्तियुतः क्व दिव्यः।
देवस्य देहः परमोऽस्ति चित्रं, श्रीपार्श्वनाथस्य महाप्रभावः ॥५॥

अर्थ—देखो कहाँ तो अत्यन्त निकृष्ट सर्प की पर्याय और कहाँ सम्यग्दर्शन रूपी सम्पदासे शोभायमान दिव्य-देव पर्याय। अहो भगवान् पार्श्वनाथ का महाप्रभाव अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न करने वाला है।

बाल्येपि यो भोगभवाद्विरक्तः, हित्वा च साम्राज्यपदं महान्तम्।
जिनः स्वयंभूः स बभूव योगी, पापादपायात्स च पार्श्वनाथः ॥६॥

अर्थ—जो भगवान् पार्श्वनाथ बालक अवस्था से ही संसार और भोगो से विरक्त है, जो बड़े भारी साम्राज्य पद को छोड़ कर

१—यहां पर कमठ के भवो की अपेक्षा से "जीवैः" ऐसा बहुवचन दिया गया है।

योगी हुए हैं, जो जिन हैं और स्वयंभू हैं, ऐसे भगवान पार्श्वनाथ स्वामी पापो से मेरी रक्षा करे।

निष्कांक्षवृत्तिश्च महातपस्वी, देहोऽपि मे नेति च मन्यमानः।
यः स्वात्मलीनो हि दृढासनेन, निर्द्वन्द्वभावं हि गतः स योगी॥७

अर्थ—जिन की वृत्ति सब तरह की आशाओं से रहित है, जो दृढ़ आसन धारण कर अपने आत्मा मे लीन है, जो परम योगी हैं और सब तरह के द्वंद्व भाव को छोड कर निर्द्वन्द्व अवस्था को प्राप्त हुए है।

यो निष्प्रकम्पो विभयो जिताक्षः, दृढव्रती साहसिकोतिधीरः।
तदा स दुष्टः कमठस्य जीवः, चकार वैरादुपसर्गघोरम् ॥८॥

अर्थ—उस समय वे भगवान् निष्प्रकंप थे, भय रहित थे, समस्त इन्द्रियो को जीतने वाले थे, दृढ़व्रती थे, अत्यन्त साहसी थे और अत्यन्त धीर वीर थे। उस समय दुष्ट कमठ के जीव ने पहले भव के वैर के संबध से उन भगवान् पर घोर उपसर्ग किया था।

प्रभुःसमर्थोऽप्यतुलप्रतापी, सर्वं च सेहेप्यनपेक्षवृत्तिः।
निर्मत्सरो निस्पृहको दयालुर्निजात्मलीनो भगवान् सपार्श्वः ॥९

अर्थ—वे भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी प्रभु थे, अत्यन्त समर्थ थे, महा प्रतापी थे, इस लिये उन्हो ने वे सब उपसर्ग सहन कर लिये थे। इतना होने पर भी वे किसी की अपेक्षा नही रखते थे। किसी से किसी प्रकार का मत्सर भाव नही रखते थे। वे भगवान् अत्यन्त दयालु थे और अपनी आत्मा मे लीन थे।

सम्यक्त्वशुद्धः सहपद्मयासौ, नागेन्द्र आगत्य सुभक्तिपूतः।
निवारयामास तदोपसर्गं, बृहत्फणामंडलकं च कृत्वा। १०।

अर्थ—उस समय अपनी पद्मावती देवी के साथ आकर श्रेष्ठ भक्ति से पवित्र और शुद्ध सम्यग्दर्शन को धारण करने वाले नागेन्द्र ने अपने फणा का बहुत बड़ा मंडल बनाकर उस उपसर्ग को दूर किया था।

दृक्शालिनी भक्तिभरा सुपद्मा, जिनेश्वरं मूर्ध्नि बभार भक्त्या।
ध्यानाच्च शुक्लात्स जिनेश्वरोपि, कैवल्यमाप प्रविधूतकर्मा॥११

अर्थ—उस समय सम्यग्दर्शन को धारण करने वाली और भक्ति से नम्र ऐसी पद्मावती ने बड़ी भक्ति से भगवान् को अपने मस्तक पर धारण किया था। उसी समय भगवान् पार्श्वनाथ ने भी शुक्लध्यान धारण कर अपने कर्मों को नष्ट कर दिया था और केवलज्ञान प्राप्त कर लिया था।

जीवन्प्रमुक्तो विमलोस्तदोपः, नागेन्द्रपद्मादिसुरैः प्रपूज्यः।
त्रिलोकभानुर्विभयो विशुद्धः, तस्मै नमः पार्श्वजिनेश्वराय॥१२

अर्थ—उस समय वे भगवान् जीवन्मुक्त थे, अत्यन्त निर्मल थे, समस्त दोषों से रहित थे, धरणीन्द्र-पद्मावती के द्वारा पूज्य थे, तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाले सूर्य थे, भयरहित थे और अत्यन्त विशुद्ध थे; ऐसे उन पार्श्वनाथ भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ।

मूर्तिर्यदीया फणमंडितास्ति, नागेन्द्रदेवेन्द्रकृतोरुशोभा।
सत्प्रातिहार्याष्टकराजमाना, पायादपायात्स च पार्श्वनाथः।१३

अर्थ—जिन की मूर्ति फणा से सुशोभित है, देवेन्द्र-नागेन्द्र-आदि देवो के द्वारा जिस की शोभा बढ़ाई जा रही है और जो श्रेष्ठ आठ प्रातिहार्यों से सुशोभित हैं; ऐसे वे भगवान् पार्श्व-नाथ स्वामी पापों से मेरी रक्षा करे।

अलंघ्यशक्तिर्वरदो सुमंत्री, मंत्रप्रणेता भुवि मंत्रदाता।
मंत्रेश्वरो विघ्नहरोर्थदाता,पायादपायात्स च पार्श्वनाथः॥१४॥

अर्थ—वे भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी अंलघ्य शक्ति को धारण करने वाले हैं, मंत्रो के स्वामी हैं, मंत्रो का निरूपण करने वाले हैं, मत्रो के देने वाले हैं, समस्त मंत्रों के ईश्वर हैं, विघ्न को दूर करने वाले है और चिंतित पदार्थो को देने वाले हैं, ऐसे भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी पापो से मेरी रक्षा करे।

चिन्तामणिश्चिंतितवस्तुदाने, त्वं कामधेनुर्भुवि वांछितार्थे।
त्वं कल्पवृक्षस्तदभीष्टदाने, पायादपायात्स च पार्श्वनाथः॥१५॥

अर्थ—हे भगवान् पार्श्वनाथ! आप चिंतित पदार्थों को देने के लिये चिंतामणि है. इस संसार में इच्छानुसार पदार्थों को-देने के लिये कामधेनु हैं, और अपने-अपने इष्ट पदार्थो को देने के लिये कल्पवृक्ष हैं, ऐसे हे भगवन् पार्श्वनाथ! पापो से मेरी रक्षा कीजिये।

स्मरेण भक्त्या जपनेन यस्य, ध्यानेन गीतेन समर्चया वा।
प्राप्नोति सिद्धिश्च मनोनुकूला,पायादपायात्स च पार्श्वनाथः१६॥

अर्थ—जिन पार्श्वनाथ का स्मरण करने से, भक्ति पूर्वक जप करने से, ध्यान करने से, गुण गान करने से और अच्छी तरह

पूजा करने से इच्छानुसार सिद्धि प्राप्त हो जाती है; ऐसे वे भगवान् पार्श्वनाथ जिनेन्द्र देव पापों से मेरी रक्षा करें।

नागेन्द्रपद्मावतिसेवितं तं, श्रीपार्श्वनाथं हि जपेत्सुमंत्रैः
सिद्धिःसमस्ता सकलाश्च विद्याः, सिद्ध्यन्ति तस्येह च नात्र चित्रं

अर्थ—श्रीमत् धरणेन्द्र-पद्मावती के द्वारा संसेवित ऐसे श्री पार्श्वनाथ भगवान् का जो मंत्रों के द्वारा जप करता है या ध्यान करता है, उस को समस्त प्रकार के कार्यों की सिद्धि होती है। और आकाशगामिनी आदि विद्यायें भी स्वयमेव सिद्ध हो जाती है। इस में किसी प्रकार का संदेह नहीं है। न कोई भी आश्चर्य है।

आकर्षणं स्तम्भनशांतिपुष्टि, विद्वेषकर्माणि च सांति लोके।
श्रीपार्श्वनाथस्य जपेन सद्यः, सिद्ध्यन्ति चाभीष्टफलप्रदानि।१८।

अर्थ—संसार मे आकर्षण-स्तम्भन-शान्ति-पुष्टि-विद्वेष-उच्चाटन आदि जितने कर्म है वे सब श्रीपार्श्वनाथ भगवान् के जप करने मात्र से ही अभीष्ट फल देने वाले सिद्ध हो जाते हैं।

प्रेतादिका राक्षसभूतबाधा, उपद्रवं वा लघुदेवतानाम्।
नश्यत्यवश्यं जपनेन सद्यः,श्रीपार्श्वनाथस्य जिनस्य तस्य ॥१९॥

अर्थ—प्रेत-भूत-राक्षस-डाकिनी-शाकिनी आदि दुष्ट देवों की बाधा अथवा मिथ्यादृष्टि देवों के उपद्रव श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र भगवान् के जप करने मात्र से तत्काल ही अवश्य नष्ट हो जाते है।

ब्रह्ममायादिसंयुक्तं, श्रीं क्लीं द्वापबीजकं।
क्ष्वीं प्रणवेन तत्त्वं तं, स्वाहान्तं विधिना जपेत् ॥२०॥

अर्थ—लक्ष्मी के सिद्धि के लिये श्रीपार्श्वनाथ भगवान् का मंत्र इस प्रकार जपना चाहिये। एकान्त शुद्ध स्थान में प्रथम श्रीपार्श्वनाथ भगवान् का पुराकर्म और सकलीकरण पूर्वक कार्य करना चाहिये तथा पचामृताभिपेक कर गन्धोदक से शरीर की शुद्धि मंत्र पूर्वक कर पूर्व दिशा में सूर्योदय के समय भद्रासन से सफेद माला से अंगुष्ठ और तर्जनी अंगुली से सफेद पुष्पो से जप करे 'ओं ह्रा ह्रीं ह्रूँ ह्रौं ह्रः णमो अरिहंताणं ओं नमो भगवते धरणेन्द्रपद्मावतिसहिताय श्रीपार्श्वनाथाय श्रीं क्लीं ला ह्रा प द्वी वपट् स्वाहा', मंत्र के सवा लक्ष जप और दशमांश हवन से लक्ष्मी भरपूर वढती है। पुण्यात्मा जीव को सिद्धि होती है। पल्लव वदल देने पर यही मंत्र प्रत्येक कार्य मे उपयोगी होता है।

भगवान् महावीर स्वामी की स्तुति
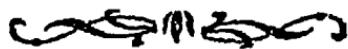
श्रीकुण्डनाख्ये नगरे विशाले, कृतावतारो नृसुरैश्च पूज्यः ।
कामेभसिंहः शुभसिंह चिन्हः, वंद्योस्ति वीरो जिनवर्द्धमानः ॥१॥

अर्थ--जिन्हो ने कुण्डनपुर नाम के विशाल नगर में अवतार लिया है, जो नरेन्द्र-सुरेन्द्र आदि सब के द्वारा पूज्य हैं, काम रूपी हाथी को मर्दन करने के लिये सिंह है और सिंह के शुभ चिह्नों से शोभायमान है; ऐसे श्रीवीर वर्द्धमान जिनेन्द्रदेव सब के द्वारा वंदनीय हैं ।

यस्येह धर्मोस्ति परं पवित्रः, अर्थस्य कामस्य सुखस्य दाता ।
स्वर्गापवर्गस्य च साधकोऽत्र, तं वीरनाथं प्रणमामि देवम् ॥२॥

अर्थ--जिन भगवान वीरनाथ का धर्म परम पवित्र है, अर्थ-काम और सुख को देने वाला है और स्वर्ग-मोक्ष का साधक है; ऐसे देवाधिदेव भगवान् वीरनाथ को मै नमस्कार करता हूँ ।

क्षेत्रे विदेहेऽस्ति च योऽहि धर्मः, नाभेयनाथेन च यः प्रवृत्तः ।
द्वाविंशतीर्थेश्वरपालितो यः, वीरेण चोक्तो हि स एव धर्मः ॥३॥

अर्थ--जो धर्म विदेह क्षेत्र में अनादि काल से चला आरहा है, भगवान् ऋषभदेव ने इस युग मे जिस की प्रवृत्ति की है तथा अजितनाथ से लेकर पार्श्वनाथ भगवान् तक बाईस तीर्थंकरों ने

जिस का पालन किया है, वही धर्म भगवान् महावीर स्वामी ने निरूपण किया है।

सनातनो नित्यमनादिकोसौ, क्षेत्रे कचित्क्वापि कदापि काले।
केन प्रकारेण कथंचिदत्र, नोपैति धर्मः परिवर्तनं सः ॥४॥

अर्थ—यह धर्म सनातन है, नित्य है और अनादि काल से चला आरहा है। वह धर्म किसी भी क्षेत्र मे तथा किसी भी काल में किसी भी प्रकार और किसी भी रूप से बदल नही सकता। वह सदा जैसा का तैसा ही उसी प्रकार बना रहता है।

धर्मक्रियायाः परिवर्तनं चेत्, हिंसा भवेद्धर्म इहापि कुत्रः।
पुण्यं भवेद्वा व्यभिचारतश्च, एवं न भूतो न भविष्यतीह ॥५॥

अर्थ—यदि काल के अनुसार धर्म क्रियाये बदल जायं तो इस संसार मे किसी क्षेत्र मे हिंसा भी धर्म हो सकता है अथवा व्यभिचार-सेवन से भी पुण्य की प्राप्ति हो सकती है, परन्तु ऐसा न कभी हुआ है और न कभी हो सकता है।

कालाद्भवेत्सोपि जनानुकूलः, अक्षानुरक्ताः कथयन्ति जीवाः।
शोच्याःकथं ते न विवेकशून्याः,पापक्रिया क्वापि भवेन्नधर्मः॥६॥

अर्थ—इन्द्रियो के विषयो के लोलुपी कितने ही जीव यह कहते हैं कि काल के अनुसार वह धर्म भी मनुष्यो के अनुकूल होजाता है, परन्तु ऐसे लोग विवेक-शून्य है और सदा शोचनीय हैं, क्योंकि पाप रूप क्रियायें कभी धर्म रूप नहीं हो सकतीं।

स्वच्छाशनं पूतलमं विशुद्धं, त्वदीयधर्मोऽस्ति परं पवित्रः।
द्वयोस्तयोर्नो मलिनप्रवृत्तिः, ततोऽसि धन्यो जिन वीरनाथ ॥७॥

अर्थ-हे भगवन्! आप का शासन परम पवित्र है और विशुद्ध है। आप का धर्म भी परम पवित्र है। इन दोनो की प्रवृत्ति कभी मलिन रूप नहीं होती। इस लिये हे जिन! हे वीरनाथ! आप बहुत ही धन्य है।

अनादिधर्मः स तु जैनधर्मः, द्वेधा मतो निश्चयधर्म आद्यः।
द्वितीयधर्मो व्यवहारनामा, वीरेण चोक्तो जनताहिताय ॥८॥

अर्थ—वह जैन धर्म अनादि काल से चला आरहा है। वह धर्म दो प्रकार है-पहला निश्चय धर्म और दूसरा व्यवहार धर्म। इन दोनों का स्वरूप भगवान् वीरनाथ ने भव्य जीवों के हित के लिये निरूपण किया है।

क्रियाविहीनो हि सदात्मरूपः, वस्तुस्वभावः स च निर्विकल्पः।
अमूर्तको निश्चयधर्म एप, वीरेण चोक्तो जनताहिताय ॥९॥

अर्थ—यह निश्चय धर्म क्रिया रहित है, सदा आत्म स्वरूप है, आत्म वस्तु के स्वभाव रूप है, निर्विकल्प रूप है और अमूर्त है; ऐसा यह निश्चय धर्म भव्य जीवों के हित के लिये भगवान् वीरनाथ ने निरूपण किया है।

क्रियात्मको यो व्यवहारनामा, क्रियास्ति सा या चरणानुकूला।
आज्ञानुरूपा तव शासनस्य, क्रियैव सा वीरजिनस्य धर्मः॥१०॥

अर्थ—जो क्रियात्मक धर्म है वह व्यवहार धर्म कहलाता है तथा क्रिया वह कहलाती है जो सम्यक् चारित्र के अनुकूल हो और आप के शासन की आज्ञा के अनुकूल हो। ऐसा यह क्रिया-

त्मक धर्म का स्वरूप भगवान् वीरनाथ का कहा हुआ समझना चाहिये।

अस्तीह मुख्यो व्यवहारधर्मः, न तं विना निश्चयधर्मसिद्धिः।
गृहीशिनां चास्ति यतीशिनांवा, क्रियाकरोसौ व्यवहारधर्मः ॥११॥

अर्थ—व्यवहार धर्म भी इस संसार में मुख्य धर्म है। उस के विना निश्चय धर्म की सिद्धि कभी नहीं हो सकती। गृहस्थ और मुनि दोनो के लिये क्रिया रूप व्यवहार धर्म का निरूपण किया गया है।

आसप्तमान्तं व्यवहारधर्मः, न तं विना काचन मोक्षसिद्धिः।
स्वर्गापवर्गस्य च साधकोस्ति, प्रोक्तः स मुख्यो व्यवहारधर्मः ॥१२

अर्थ—सातवें गुणस्थान तक व्यवहार धर्म माना जाता है उस के विना मोक्ष की सिद्धि कभी नहीं हो सकती। यह व्यवहार धर्म मुख्य धर्म है और स्वर्ग-मोक्ष को सिद्ध करने वाला कहा गया है।

शिवस्य मार्गो व्यवहारधर्मः, मार्गो मुनीनां व्यहारधर्मः।
गुप्त्यात्मकोसौ व्यवहारधर्मः, वीरेण चोक्तो जनताहिताय ॥१३॥

अर्थ—मोक्ष का मार्ग रत्नत्रय भी व्यवहार धर्म है, मुनियों का मार्ग भी व्यवहार धर्म है तथा तीन गुप्तियों का पालन करना भी व्यवहार धर्म है। यह सब व्यवहार धर्म का स्वरूप भगवान् वीरनाथ ने भव्य जीवों का हित करने के लिये निरूपण किया है।

महाव्रतस्याचरणं स एव, अणुव्रतस्याचरणं स एव।
वीरागमेऽसौ व्यवहारधर्मः, वीरेण चोक्तो जनताहिताय ॥१४॥

अर्थ—महाव्रतों का पालन करना भी व्यवहार धर्म है और अणुव्रतों का पालन करना भी व्यवहार धर्म है। भगवान् वीरनाथ के आगम में यह व्यवहार धर्म लोगों का हित करने के लिये भगवान् वीरनाथ ने निरूपण किया है।

पापाप्रवृत्तिर्जिनमार्गरूपा, यो यो विचारोस्ति स आगमोक्तः।
स एव धर्मो व्यवहारनामा, वीरेण चोक्तो जनताहिताय ॥१५॥

अर्थ—जिन मार्ग के अनुसार होनेवाली जो-जो शुभ प्रवृत्तियां है तथा आगम के अनुकूल जो-जो विचार हैं, वह सब व्यवहार धर्म है और भव्य जीवों का कल्याण करने के लिये भगवान् वीरनाथ ने उस व्यवहार धर्म का निरूपण किया है।

रीतिः प्रवृत्तिश्च कुलस्य यत्र, आचार अस्तीह जनस्य लोके।
अज्ञानरूपो जिनशासनस्य, स एव धर्मो व्यवहारनामा ॥१६॥

अर्थ—इस संसार में लोगों के जिनशासन की आज्ञा के अनुकूल जो-जो आचरण है, जो-जो कुल की रीति और कुल की प्रवृत्ति हैं, वह सब व्यवहार धर्म कहलाता है।

शुद्धिश्च पिंडस्य सुभोजनस्य, अपत्यशुद्धिश्च चरित्रशुद्धिः।
रजःस्वलासूतकपातशुद्धिः, गर्भस्य शुद्धिश्च मलस्य शुद्धिः।१७॥

यास्तीह शुद्धिश्चरणानुकूला, वाज्ञानरूपा जिनशासनस्य।
शुद्धिः समस्ता व्यवहारधर्मः, वीरेण चोक्तो जनताहिताय ॥१८॥

अर्थ—जिस रजो-वीर्य से शरीर बनता है उस की शुद्धता को पिंडशुद्धि कहते हैं। पिंड की शुद्धि, भोजन की शुद्धि, संतान की शुद्धि, चरित्र की शुद्धि, रजःस्वला की शुद्धि, सूतक-पातक की

शुद्धि, गर्भ की शुद्धि, मल की शुद्धि तथा और भी जो-जो सम्यक् चारित्र के अनुकूल शुद्धि है, जो-जो शुद्धि जिनशासन की आज्ञा के अनुकूल है, वह सब प्रकार की शुद्धि व्यवहार धर्म है और वह शुद्धि रूप व्यवहार धर्म भव्य जीवों का कल्याण करने के लिये भगवान् वीरनाथ ने निरूपण किया है।

जातिव्यवस्था व्यवहारधर्मः, वर्णाश्रमोसौ व्यवहारधर्मः ।
भुक्तिक्रिया चास्ति स एव धर्मः, वीरेण चोक्तो जनताहिताय।१९।

अर्थ—जाति-व्यवस्था व्यवहार धर्म है, वर्णाश्रम को मानना व्यवहार धर्म है, शुद्ध और आहारदान पूर्वक भोजन की क्रिया करना भी व्यवहार धर्म है। यह सब धर्म का स्वरूप भव्य जीवों के हित के लिये भगवान् वीरनाथ ने निरूपण किया है।

जातिश्च वर्णश्च भवत्यनादिः, स्वरूपभेदाच्च तयोर्विभेदः।
द्वयोस्तयो लक्षणतोपि भेदः, वीरेण चोक्तो व्यवहारधर्मः ।२०।

अर्थ—इस संसार मे वर्णव्यवस्था भी नित्य है, और जाति व्यवस्था भी नित्य है। तथा दोनो का स्वरूप अलग-अलग है इस लिये दोनों मे भेद भी है और लक्षण दोनो के अलग-अलग होने से भी दोनो मे भेद है। यह सब व्यवहार धर्म भगवान् वीरनाथ ने निरूपण किया है।

संस्कारमुख्यो व्यवहारधर्मे, संस्कारहीनस्य च नाधिकारः।
दीक्षासु दानेषु जिनार्चनेषु, द्विजस्य वीरेण जिनेन चोक्तः ।२१

अर्थ— इस व्यवहार धर्म मे गर्भाधानादिक संस्कार ही मुख्य माने जाते हैं जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य संस्कार-हीन हैं, उन-को

दीक्षा-दान और जिनपूजा करने का कोई अधिकार नहीं है। यह सब कथन भगवान् वीरनाथ ने निरूपण किया है।

कुलेन जात्या भुवि यो विशुद्धः, संस्कारभाक् सोऽस्तु मतो जिनेन
शूद्रस्य नास्तीह च सोऽधिकारः, कार्यं सदा कारणतोऽनुमेयम् ।२२

अर्थ—इस संसार में जो कुल और जाति से शुद्ध है, उसी के संस्कार हो सकते हैं, ऐसा भगवान् जिनेन्द्र देव का मत है। संस्कार करने का अधिकार शूद्रों को नहीं है। क्योंकि वे कुल और जाति से शुद्ध नहीं हैं। किसी भी कार्य का अनुमान उस के कारणों से किया जाता है। इस लिये शूद्रों को संस्कारों के न होने का कारण कुल-जाति की अशुद्धता ही समझनी चाहिये।

निकृष्टगोत्रोदयतोऽघपाकात्, सावद्यकर्माश्रितजीवनत्वात्।
जैनस्य मातंगसुतस्य नास्ति, स्पर्शाधिकारो व्यवहारधर्मे ॥२३॥

अर्थ—चांडाल यदि जैन धर्म को भी धारण करता हो तो भी उस के नीच गोत्र का उदय होने से तथा पापकर्म का तीव्र उदय होने से उस का जीवन पाप रूप कर्मों के आश्रय होने से व्यवहार धर्म में उस को स्पर्श करने का अधिकार नहीं बतलाया गया है। चांडाल सब प्रकार से अस्पृश्य है।

संस्पर्शनेऽस्पृश्यजनस्य लोके, स्नानं मुनीनां च सहोपवासः
श्रीआगमे वीरजिनेन प्रोक्तः, सर्वज्ञनाथेन जगद्धिताय ॥२४॥

अर्थ—इस संसार में चाण्डाल आदि अस्पृश्य लोगों का स्पर्श हो जाने मात्र से मुनियों को भी उपवास के साथ साथ स्नान करना बतलाया है। मुनि स्नान के त्यागी होते हैं तथापि चांडाल

का स्पर्श हो जाने पर वे स्नान करते हैं और उपवास करते हैं। इस प्रकार सर्वज्ञ देव भगवान् वीरनाथ ने संसार का हित करने के लिये अपने आगम में निरूपण किया है।

न स्पर्श्यशूद्रस्य च पूजनेषु, द्विजेन सार्द्ध सहभोजनेषु।
वैवाहिके कर्मणि वीरधर्मे, न चाधिकारोऽस्ति कदापि काले ।२५।

अर्थ—भगवान वीरनाथ के धर्म में स्पृश्य शूद्रों को न तो भगवान् की पूजन करने का कभी अधिकार है और न विवाह आदि कार्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के साथ पंक्ति-भोजन करने का अधिकार है।

विवाहसंस्कार इह स्वजात्यां, जात्यन्तरे नापि भवेद्द्विजात्याम्।
वीरेण चोक्तो निजशासनेषु, सर्वज्ञनाथेन जगद्धिताय ।।२६।।

अर्थ—विवाह संस्कार अपनी ही जाति में होता है, दूसरी जाति वा विजाति में कभी नहीं होता है। यही मत सर्वज्ञदेव भगवान् वीरनाथ ने संसार के प्राणीमात्र का हित करने के लिये अपने शासन मे निरूपण किया है।

वैधव्यदीक्षा तव शासनेऽस्ति, पुनर्विवाहो न मतो हि तासाम्।
स्त्रीणां द्विजानां पतिरेक एव, हे वीर ते शासनमस्ति पूतम् ।।२७।।

अर्थ—हे प्रभो! वीरनाथ भगवन्! आप के मत मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यो की विधवा स्त्रियो को वैधव्य-दीक्षा निरूपण की है। विधवा हो जाने पर उन के लिये पुनर्विवाह का विधान नहीं है। क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यो की स्त्रियो के एक ही पति होता

है। इसी लिये हे वीरनाथ ! आप का शासन अत्यंत पवित्र माना जाता है।

कथं कदाचारकुरीतिवृत्तिः, पूते पवित्रेऽस्ति च वीरधर्मे।
कालात्कदाचारमिहात्र धर्मे, वदन्ति ते नाथ विवेकशून्याः ॥२८॥

अर्थ—हे नाथ ! यह भगवान् वीरनाथ का धर्म अत्यन्त पवित्र और शुद्ध है। इस मे कदाचार और कुरीतियो की प्रवृत्ति भला कैसे हो सकती है ? जो पुरुष इस पवित्र धर्म में भी काल के अनुसार कदाचारों की प्रवृत्ति मानते है तथा कहते है, वे अवश्य ही विवेक-रहित है।

श्रद्धानमत्रागमकस्य मुख्यं, वीरस्य ते तद् व्यवहारधर्मे।
श्रद्धानहीनस्य न चास्ति धर्मः, श्रद्धानमादौ हि जिनेन चोक्तम् २९

अर्थ—हे वीरनाथ भगवन् ! आप के कहे हुए उस व्यवहार धर्म मे आगम का श्रद्धान करना ही मुख्य धर्म बतलाया है। जो पुरुष आगम का श्रद्धान नहीं करता उस के किसी प्रकार का धर्म धारण नहीं हो सकता, इसी लिये भगवान् जिनेन्द्रदेव ने सब से पहले श्रद्धान का ही निरूपण किया है।

सुदृष्टिनिमित्तं जिनदर्शनं हि, भव्यः प्रभाते जिनदेवभक्त्या।
करोति यः श्रीजिनबिम्बकस्य, दृष्टिः स एवास्ति च वीरधर्मे।३०

अर्थ—सम्यग्दर्शन का कारण प्रतिदिन भगवान् जिनेन्द्र देव के दर्शन करना है। जो भव्य पुरुष भगवान् जिनेन्द्र देव की भक्ति पूर्वक प्रातः काल के समय जिन बिम्ब का दर्शन करता है उसी को भगवान् वीरनाथ के धर्म मे सम्यग्दृष्टि कहा है।

सम्यक्त्वभावेन यदा विशुद्धं, मनो भवेच्चारुचरित्ररूपम् ।
तदा स जैनो जिनराधकोऽस्ति, आज्ञाप्रधानी भुवि वीरधर्मे ॥३१॥

अर्थ—भगवान् वीरनाथ के धर्म में जब यह जीव सम्यग्दर्शन पूर्वक सुन्दर विशुद्ध चरित्र को धारण कर अपने मन को उन दोनो मे लगा देता है अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यक्चरित्र से जिस का मन शुद्ध हो जाता है उसी समय वह जैन, भगवान् जिनेन्द्र देव को आराधन करने वाला और आज्ञाप्रधानी माना जाता है।

मिथ्यात्वलीना च सरागभेषा, मूढा न मान्या भुवि देवता सा।
मिथ्यात्वरागादिकदोषहीनः, देवो भवेदेव स वीरधर्मे ॥३२॥

अर्थ—भगवान् वीरनाथ के पवित्र धर्म में मिथ्यात्व में लीन रहने वाले और राग-द्वेषरूप भेष को धारण करने वाले मूढ़ कुदेवता कभी नहीं माने जाते हैं। जो मिथ्यात्व राग आदि समस्त दोषों से रहित हैं वे ही देव भगवान् वीरनाथ के धर्म में माने जाते हैं।

क्षुधादयो दोषगणा न देवे, सन्तीह मोहादिककर्मनाशात् ।
भुक्तिं च देवे कवलादिरूपा मूचुश्च ये ते हि विवेकशून्याः ॥३३॥

अर्थ—भगवान् अरहंत देव के मोहादिक घातिया कर्मों का नाश होजाता है, इसी लिये उनके भूख-प्यास आदि कोई भी दोष नहीं होता है। जो पुरुष भगवान् अरहंत देव के भी कवलाहार का सद्भाव मानते हैं, वे अवश्य ही विवेकरहित हैं।

दोषो भवेच्चेद्यदि देव एव, सदोषदेवो न कदापि मान्यः।
नोचाखिलज्ञोपिभवे ज्जिताक्षो, निर्दोषदेवोस्त च वीरधर्मे॥३४॥

अर्थ—यदि देव में भी भूख-प्यास आदि दोष माने जाँय तो इस संसार मे दोष सहित देव कभी मान्य नहीं हो सकते हैं। और न वे सदोष देव कभी भी सर्वज्ञ हो सकते हैं। जो समस्त इन्द्रियो को जीतने वाला और समस्त दोषो से रहित है भगवान् वीरनाथ के धर्म मे वही देव हो सकता है।

निवृत्तरागस्य जिनस्य वाथ, तदीयमूर्तेरपि वीरधर्मे ।
मान्यो न वस्त्रादिकवेषभूषा, स मोहरूपो कथितो जिनेन ॥३५॥

अर्थ—भगवान् वीरनाथ के धर्म मे राग-द्वेष से रहित भगवान् जिनेन्द्र देव के अथवा उन की मूर्ति के वस्त्र-आभरण आदि वेष-भूषा भी नहीं माना जाता। क्योंकि वह वस्त्राभरण का वेषभूषा मोह रूप है, मोह उत्पन्न करनेवाला है और मोह के उदय से होता है। ऐसा भगवान् वीरनाथ ने निरूपण किया है।

नैर्ग्रन्थ्यरूपं हि शिवस्य मार्गः, वस्त्रादिकं रागकरन्तु तत्र ।
अतो यतीनां च जिनेशिनां च, दैगम्बरी तेऽस्ति सुधर्ममुद्रा ॥३६॥

अर्थ—मोक्ष का मार्ग समस्त प्रकार के परिग्रहो से रहित निर्ग्रंथ रूप है। उस मे वस्त्रादिक को धारण करना राग उत्पन्न करने वाला है। इसी लिये मुनियो की धर्ममुद्रा और जिनेन्द्र देव की धर्ममुद्रा दिगम्बर रूप ही मानी जाती है। हे भगवन्[1] आप का यही निर्मल मत है।

---

१ इस संस्कृत स्तुति के रचियता परम पूज्य मुनिराज सुधर्म-सागर महाराज की मुद्रा भी दिगम्बर है।

मुक्तिर्न वा संहननाद्यभावात्, स्त्रीणां हि निर्ग्रन्थकताद्यभावात् ।
प्रमाणभूतो भुवि वीरधर्मः, न शासने तेस्ति कदापि बाधा ॥३७॥

अर्थ—स्त्रियों के न तो वज्रवृषभनाराचसंहनन होता है और न उन के कभी निर्ग्रंथ अवस्था होती है। इसी लिये उन को स्त्री पर्याय में कभी भी मोक्ष-प्राप्ति नहीं हो सकती। हे वीरनाथ! आप के शासन में कभी किसी प्रकार की बाधा नहीं आती। इसीलिये भगवान् वीरनाथ का धर्म इस संसार में प्रमाण माना जाता है।

स्नानेन गंगादिनदीषु मोक्षो, भवेन्न सत्यं बहुजीवघातात् ।
तपो हि कर्मक्षयमूलहेतु, मोक्षो भवेत्तेन च वीरधर्मे ॥३८॥

अर्थ—हे भगवन् महावीर स्वामिन्! आप के धर्म में गंगा आदि नदियों में स्नान करने से मोक्ष की प्राप्ति नहीं मानी है। सो ठीक ही है। क्योंकि नदियों में स्नान करने से अनेक जीवों का घात होता है। समस्त कर्मों का नाश होना मोक्ष है और कर्मों के नाश होने का मूल कारण तपश्चरण है। इस लिये हे नाथ! आप के धर्म में तपश्चरण से ही मोक्ष होती है।

न वा पशूनां भुवि यज्ञहिंसा, क्रूरा विगर्ह्या तव शासनेषु ।
त्वत्तः परो नास्ति दयामयो हि, धर्मोपि ते वीर दयापरोऽत्र ॥३९॥

अर्थ—हे प्रभो वीरनाथ भगवन्! आप के शासन में अत्यंत क्रूर और अत्यंत निंदनीय ऐसी यज्ञ में होने वाली पशुओं की हिंसा कभी नहीं बतलाई है। इसी लिये हे नाथ! आप के सिवाय अन्य कोई भी मनुष्य आप के समान दयामय नहीं है तथा इसी लिये आप का कहा हुआ यह धर्म दयामय कहलाता है।

स्त्रीणां सतीत्वं तव शासनेषु, घातात्मकं प्राणहरं न देव ।
दीक्षाविधानं परमं सतीत्वं, तासां मृते भर्तरि दीक्षिते वा ॥४०॥

अर्थ—हे देव ! आप के शासन में स्त्रियों का सतीत्व धर्म प्राणों को हरण करने वाला आत्महत्या रूप नहीं बतलाया है। यदि स्त्रियों का पति मर जाय वा दीक्षा ले लेवे तो फिर उन स्त्रियों को दीक्षा ही ले लेनी चाहिये, यही उन का परम सतीत्व है। यही आप के शासन में बतलाया है।

बलिप्रदानं लघुदेवतानां, भवेत्पशूनां भुवनेऽतिनिंद्यम् ।
न चास्ति धर्मस्तव शासने हि, हिंसाकरं दुःखकरं सुवीर ॥४१॥

अर्थ—हे वीरनाथ भगवन् ! चंडी-मुण्डी आदि छोटे-छोटे देवताओं को तीनों लोकों में अत्यंत निंद्य हिंसा करने वाला और तीव्र दुःख देने वाला पशुओं का बलिदान आप के शासन में कभी धर्म रूप नहीं बतलाया है।

सुराप्रदानं ह्यतिनिंद्यरूपं, कुत्सं न योग्यं लघुदेवतानाम् ।
नापि द्विजानां तव शासने च, ह्यतोऽस्ति ते वीर पवित्रधर्मः॥४२॥

अर्थ—हे वीरनाथ भगवन् ! आप के शासन में न तो चंडी-मुण्डी आदि छोटे-छोटे देवताओं को अत्यंत निंद्य और घृणित ऐसा मद्य-सेवन बतलाया है और न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के लिये मद्य-पान का विधान बतलाया है। हे वीर ! इसी लिये आप का यह धर्म अत्यंत पवित्र माना जाता है।

धर्मस्य कार्ये च शुभे प्रसंगे, हिंसा न मान्या तव शासनेऽस्ति।
जीवस्य बाधा न दयामयेषु, हे वीर धर्मेषु सुखाकरेषु ॥४३॥

अर्थ—हे वीरनाथ! आप के शासन में किसी भी धर्म कार्य के समय अथवा किसी भी शुभ कार्य मे हिंसा करने का विधान नहीं बतलाया है। सो ठीक ही है, क्योंकि समस्त जीवों को सुख देने वाले और दयामय धर्म मे जीवों को किसी प्रकार की बाधा कभी हो ही नहीं सकती।

अपक्वपक्वस्य पलस्य नाऽस्ति, शुष्कस्य वा भक्षणमत्र मान्यम्।
जीवाभिघातादघकारणत्वाद्दयामये वीर सुशासने ते ॥४४॥

अर्थ—हे वीरनाथ भगवन्! आपके दयामय शासन में कच्चे पक्के वा सूखे हुये मास का भक्षण करना कभी भी योग्य नहीं माना गया है। क्योंकि सब तरह के मांस-भक्षण मे अनन्त जीवों का घात होता है और इसी लिये उस से महा पाप उत्पन्न होता है।

देवस्य धर्मस्य च कारणेन, मांसो न भक्ष्यस्तव शासनेऽत्र।
दयामयो वीर यतो हि धर्मः, जीवाभिघातो न कदापि योग्यः॥४५

अर्थ—हे प्रभो वीरनाथ भगवन्! आप के दयामय शासन मे किसी भी देव वा धर्म के कारण भी मांस-भक्षण करना योग्य नहीं बतलाया है। सो ठीक ही है, क्योंकि धर्म का स्वरूप दयामय है। फिर उस में कभी भी जीवो का घात करना योग्य नहीं हो सकता।

निरागसानां न मृगादिकानामाखेटनं क्वापि कदापि योग्यम्।
प्राणाभिघातादिह शासने ते, गीतो ह्यहिंसा परमो हि धर्मः॥४६॥

अर्थ—हे वीरनाथ भगवन्! आप के पवित्र शासन में निरपराध हिरण आदि जीवों की शिकार खेलना कभी किसी

क्षेत्र मे भी योग्य नहीं बतलाया है। क्योंकि उस में जीवों की हिंसा अवश्य होती है। हे नाथ! इसी लिये आप का यह धर्म "अहिंसा परमो धर्मः" अर्थात् अहिंसा ही परम धर्म है, इस प्रकार संसार भर मे प्रसिद्ध है।

वेश्यापरस्त्र्यादिकसेवनं हि, न शासने वीर तवास्ति धर्मः।
द्यूतोतिनिंद्यश्च यतो न धर्मः परं पवित्रो भुवि वीरधर्मः ॥४७॥

अर्थ—हे भगवन् वीरनाथ! आप के शासन मे वेश्या-सेवन वा परस्त्री-सेवन भी धर्म नहीं माना है। और न अत्यंत निंदनीय ऐसा जूआ खेलना धर्म माना है। इस का भी कारण यह है कि इस संसार मे आप का ही धर्म परम पवित्र है और इसी लिये इन सब का निषेध है।

धर्मो न वाऽगालितनीरपानं, भुक्तिर्निशायामघपंचसेवा।
वीर प्रभोस्तेस्ति च शासने वा, दयाकरे शान्तिकरे पवित्रे ॥४८॥

अर्थ—हे महावीर स्वामिन्! आप का शासन दया करनेवाला और अत्यंत पवित्र है। इसी लिये आप के धर्म में विना छना पानी पीना नहीं बतलाया है, न रात्रि-भोजन बतलाया है और न पांचों प्रकार के पापो का सेवन करना बतलाया है।

इज्या महेज्या नवदेवतानां, चैत्यप्रतिष्ठा स्नपनं जिनस्य।
वात्सल्यभावं निजधार्मिकेषु, वीरेण चोक्तो व्यवहारधर्मः ॥४९

अर्थ—अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनवाणी, जिनधर्म, जिनालय और जिन-प्रतिमा, ये नौ देवता कहलाते हैं। इन नौ देवताओं की पूजा वा महापूजा करना, जिन-प्रतिमा की

प्रतिष्ठा करना, भगवान् जिनेन्द्र देव का अभिषेक करना और अपने धर्मात्मा भाइयों में वात्सल्य भाव धारण करना आदि सब को भगवान् वीरनाथ ने व्यवहार धर्म बतलाया है।

वीरस्य धर्मस्य कथाऽस्ति लोके, परं पवित्रा निरवद्यकस्य।
तां वक्तुमीशो न सुराधिपोपि, धन्यस्ततस्त्वं जिन वीरनाथ ॥५०॥

अर्थ—हे जिन! हे वीरनाथ भगवन्! आप का धर्म सदा पाप रहित है। इसी लिये उस की कथा भी इस संसार में परम पवित्र मानी जाती है। हे प्रभो! ऐसी उस आप के धर्म की कथा को कहने के लिये इन्द्र भी समर्थ नहीं है। हे वीरनाथ! इसी लिये आप इस समस्त संसार में धन्य महाधन्य माने जाते हैं।

धीरोसि वीरोस्यति वीरकोऽसि, यो वीरनाथो भुवि वर्द्धमानः।
पूज्यो महावीर इति प्रसिद्धस्त्वं सन्मतीशस्त्वमसि प्रबुद्धः ॥५१

अर्थ—हे भगवन् वीरनाथ स्वामिन्! आप धीर वीर हैं, पूज्य हैं, अनंत ज्ञानवान् हैं, वीरनाथ हैं, वर्द्धमान हैं, महावीर हैं, सन्मति हैं। हे स्वामिन्! आप अनंत नामों से प्रसिद्ध है।

प्रशस्ति

श्रीमूलसंघे भुवनप्रसिद्धे, सेनान्वये पुष्करके सुगच्छे ।
वृद्धो गुणज्ञो वरधर्मनेमिः, मुनीश्वरो नेमिरसौ प्रजीयात्॥१॥

अर्थ—संसार भर मे प्रसिद्ध ऐसे इस मूलसंघ सेनगण मे पुष्कर गच्छ में होने वाले अत्यत वृद्ध गुणज्ञ और धर्म-धुरंधर ऐसे मुनिराज श्रीनेमिसागर सदा जयवंत हों ।

यः क्रियाचारनिष्णातः, स्वात्मलीनो महासुधीः ।
जिनसेनकुले चन्द्रः, बभूव संघनायकः ॥ २ ॥

अर्थ—वे नेमिसागर मुनि क्रिया और आचरण पालन करने मे चतुर थे, आत्मा में लीन थे, महा बुद्धिमान् थे, आचार्य जिनसेन के कुल में चन्द्रमा के समान थे और संघ के स्वामी आचार्य थे ।

तत्पट्टशिष्यो भुवने प्रसिद्धः, श्रीशान्तिसिन्धुर्गुणवान् मुनीशः ।
संघस्य नेताखिलभूपमान्यः, आचारदक्षो वरसूरिरस्ति ॥३॥

अर्थ—उन्हीं आचार्य नेमिसागर के पट्ट शिष्य श्रीआचार्य शान्तिसागर हैं । वे मुनिराज गुणवान् हैं, संघ के स्वामी हैं, समस्त राजाओं के द्वारा मान्य हैं, सम्यक् चारित्र को पालन करने में चतुर हैं और संसार भर मे प्रसिद्ध हैं ।

धर्म उद्धरितो येन, जिनेन इव सूरिणा ।
पूज्यपादः सदा वंद्यः, शान्तिसिंधुर्जगद्गुरुः ॥ ४ ॥

अर्थ—जिन आचार्य शातिसागर ने तीर्थकर परम देव के समान समस्त भारत मे विहार कर धर्म का उद्धार किया है, जो सदा वदनीय हैं और जिनके चरण—कमल सदा पूज्य हैं, ऐसे आचार्य शांतिसागर जगद्गुरु माने जाते हैं।

जगद्गुरोस्तस्य कलाधरस्य, सुपट्टशिष्यो हि सुधर्मसिंधुः।
चारित्रचारी च सदागमज्ञः, दिगम्बरः साधुवरः स जातः ।५।

अर्थ—जगत् गुरु और चन्द्रमा के समान निर्मल ऐसे उन आचार्य शातिसागर के श्रेष्ठ पट्ट शिष्य श्रीसुधर्मसागर हैं जो निर्मल चरित्र को धारण करने वाले हैं, श्रेष्ठ जिनागम के मर्मज्ञ हैं और दिगम्बर अवस्था को धारण करने वाले श्रेष्ठ साधु हैं।

स्तुतिश्चतुर्विंशतितीर्थपानां, विनिर्मिता स्वल्पधिया च तेन।
श्रीशांतिसूरीशकृपाकटाक्षात्, जाता सुपूर्णा भुवि मंगलाय ॥६॥

अर्थ—अल्प बुद्धि को धारण करने वाले उन सुधर्मसागर ने यह श्रीचौवीस तीर्थकर परम देवकी स्तुति निर्माण की है। तथा आचार्य श्रीशातिसागर की कृपा कटाक्ष से ससार भर मे मंगल प्रदान करने के लिये यह स्तुति पूर्ण हो गई है।

शब्दागमेन हीनं चेत्, स्तोत्रं भक्त्या मया कृतम्।
क्षाम्यन्तु मुनयः सर्वे, छद्मस्थोयं जनो भुवि ॥ ७ ॥

अर्थ—इस स्तोत्र की रचना मैं ने केवल भक्ति के वश से की है। यदि इस में शब्द और आगम की कोई कमी हो तो समस्त मुनिराजो को क्षमा कर देना चाहिये। क्योंकि इस की रचना करने वाला मै सुधर्मसागर छद्मस्थ वा अल्पज्ञानी मनुष्य हूँ।

धुलेवनगरे रम्ये, मेदपाटेति विश्रुते।
श्रीश्रीऋषभदेवस्य, केसरियाख्यधामके ॥ ८ ॥
चन्द्रालिवेदयुग्मे तु, वर्षे माघसिते शुभे।
त्रयोदश्यां समाप्तेयं, चतुर्विंशतिका स्तुतिः ॥ ९ ॥

अर्थ—मेदपाट वा मेवाड नाम के प्रसिद्ध देश के धुलेव नाम के मनोहर नगर मे श्रीवृषभदेव केसरियानाथ के प्रसिद्ध जिनालय मे वीरनिर्वाण सं० चौवीस सौ इकसठ[1] की माघ शुक्ला शुभ त्रयोदशी के दिन यह चतुर्विंशतिका स्तुति वा चौवीस तीर्थकरो की स्तुति समाप्त हुई।

नमामि शान्तिसूरीशं, भक्त्या शक्त्या पुनः पुनः।
तत्प्रसादात्कृतिश्चेयं, भूयान्मंगलदायिनी ॥ १० ॥

अर्थ—मैं सुधर्मसागर मुनि आचार्यवर्य श्रीशांतिसागर स्वामी को अपनी पूर्ण भक्ति और पूर्ण शक्ति पूर्वक बार बार नमस्कार करता हूँ। उन्हीं के प्रसाद से यह चौबीसो तीर्थंकरों की स्तुति रूप कृति संसार भर में आनंद देने वाली हो।

इस प्रकार मुनिराज श्री १०८ सुधर्मसागर-विरचित
चतुर्विंशतिका स्तुति समाप्त हुई।

१—चन्द्र शब्द से एक, अलि शब्द से छह, वेद शब्द से चार, और युग्म शब्द से दो लिये जाते हैं तथा 'अंकानां वामतो गतिः' अर्थात् अंक बाईं ओर से गिने जाते हैं। इस प्रकार रखने से २४ ६१ होते हैं।

शांति-पौर्णिमा

(आचार्य-शान्तिसागर-पञ्चदशी)
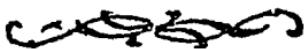
क्षमामूर्तिः श्रीमानिह च जिनसेनाग्रगणिकः,

गुणाधारः साक्षात् परमकरुणो गुप्तिनिरतः।

सदा शुद्धे ध्याने समयरसिके स्वात्मरसिकः,

स शान्त्यब्धिः सूरिर्यतिगणवरः पातु भवतः ॥१॥

अर्थ—जो शांतिसागर आचार्य क्षमा की मूर्ति हैं, सब तरह की शोभा से शोभायमान है, जिनसेन गण के नायक हैं, गुणों के आधार हैं, परम दयालु हैं, गुप्तियों मे लीन हैं, आत्मा के शुद्ध ध्यान में लीन रहने वाले है और मुनियो के समूह मे मुख्य हैं; ऐसे आचार्य शांतिसागर इस संसार से मेरी रक्षा करें।

सदाचारे विज्ञः दशविधसुधर्मेषु कुशलः,

तपो घोरं घोरं तपति नितरां शुद्धमनसा।

षडावश्ये योगी सततनिरतः शुद्धधिषणः,

स शान्त्यब्धिः सूरिर्यतिगणवरः पातु भवतः ॥२॥

अर्थ—वे आचार्य शांतिसागर सदाचार पालन करने में निपुण हैं. दश प्रकार के धर्मो को पालन करने में सदा लीन रहते हैं और शुद्ध बुद्धि को धारण करते हैं; ऐसे समस्त मुनिराजों में श्रेष्ठ आचार्य शांतिसागर इस संसार से मेरी रक्षा करें।

सदा सिद्धांतं यः पठति मनुते नीतिकुशलः,

महापंचाचारं चरति विमलं शुद्धमनसा।

मुनीनां नाथोऽसौ जिनगुणरतो भूरिगुणवान्,

स शान्त्यब्धिः सूरिर्यतिगणवरः पातु भवतः ॥३॥

अर्थ—जो आचार्य सिद्धांत ग्रंथो का पठन-पाठन वा विचार सदा करते रहते हैं, जो नीति मे कुशल हैं, अपने शुद्ध मन से अत्यंत निर्मल ऐसे महा पंचाचारों का पालन करते हैं, जो मुनियों के स्वामी हैं, भगवान् जिनेन्द्र देव के गुणो में लीन हैं और अनेक गुणों को धारण करने वाले हैं; ऐसे अनेक मुनि गणो के स्वामी आचार्य शांतिसागर इस संसार से मेरी रक्षा करें

उपाधिं द्वैविध्यं त्यजति रमते स्वात्मभवने,

सदा हिंसात्यागी समितिनिरतः संयमधरः।

पदं धृत्वा दैगम्बरमथ महाशान्तिजलधिः,

स शान्त्यब्धिः सूरिर्यतिगणवरः पातु भवतः ॥४॥

अर्थ—जो आचार्य शांतिसागर बाह्य आभ्यंतर दोनों प्रकार के परिग्रहों का त्याग करते रहते हैं, अपने आत्मा रूपी महल मे क्रीडा करते रहते हैं, सदा के लिये हिंसा के त्यागी हैं, पांचों समितियो के पालन करने में लीन हैं, संयम को धारण करते हैं और दिगम्बर अवस्था को धारण कर महा शांति के समुद्र वा सागर बन गये हैं; ऐसे अनेक मुनियों के स्वामी आचार्य शांतिसागर इस संसार से मेरी रक्षा करें।

हृषीकाणां जेता चपलहृदयारुद्धगतिकः,
महामोहज्वालां शमनकरणे शांतिजलधिः ।
महातत्त्वं वेत्ता विशदकिरणो भानुरचलः,
स शान्त्यब्धिः सूरिर्यतिगणवरः पातु भवतः ॥५॥

अर्थ—जो आचार्य समस्त इन्द्रियो को जीतने वाले हैं, चंचल हृदय की गति को सब ओर से रोकने वाले हैं, महा मोह रूपी अग्नि को बुझाने के लिये शांति के समुद्र हैं, आत्म रूप महा तत्त्व को जानने वाले हैं और निर्मल किरणो को धारण करने वाले निश्चल सूर्य के समान है, ऐसे अनेक मुनियों के स्वामी आचार्य शांतिसागर इस संसार से मेरी रक्षा करें।

नमद्देवेन्द्राणां मुकुटमणिभारंजितपदः,
चरन् प्रत्याख्यानं सकलकलुषोद्रावणकरम् ।
विकारैर्हीनोऽसौ मदनमदमायाप्रभृतिभिः,
स शान्त्यब्धिः सूरिर्यतिगणवरः पातु भवतः ॥६॥

अर्थ—जिन के चरण-कमल नमस्कार करते हुए देवो के इन्द्रों के मुकटों मे लगी हुई मणियो की छटा से अत्यन्त शोभायमान हैं, जो समस्त पापो का नाश करने वाले प्रत्याख्यान को धारण करते रहते हैं और जो काम-मद-माया आदि विकारों से सर्वथा रहित हैं; ऐसे अनेक मुनियो के स्वामी आचार्य शांतिसागर इस संसार से मेरी रक्षा करें।

महाकायोत्सर्ग चरति कठिनं दुर्द्धरतरं,
महाधीरो वीरो विभय उपसर्गसहने ।

भवापायाभावैर्विकसितमनाः पापरहितः,

स शान्त्यब्धिः सूरिर्यतिगणवरः पातु भवतः ॥७॥

अर्थ—जो शांतिसागर अत्यंत कठिन और दुर्द्धर महा कायोत्सर्ग को धारण करते हैं, जो उपसर्गों को सहन करने में निर्भय हैं, महा धीर वीर हैं, संसार संबंधी पापों का नाश हो जाने से जिन का मन अत्यन्त निर्मल है और पापो से सर्वथा रहित है; ऐसे अनेक मुनियों के स्वामी आचार्य शांतिसागर इस संसार से मेरी रक्षा करें।

सुवंद्यः पूजार्हः विदितमहिमा साधुसुगुणः,

जगत्पूज्यो नाथो निरुपमयशो ब्रह्मनिलयः।

अतस्त्वं मे बंधुर्भवदुरितभेदी शिवकरः,

स शान्त्यब्धिः सूरिर्यतिगणवरः पातु भवतः ॥८॥

अर्थ—वे शांतिसागर आचार्य वंदना करने योग्य हैं, पूजा करने योग्य है, उन की महिमा समस्त संसार में प्रसिद्ध है, वे साधुओं के समस्त निर्मल गुण धारण करने वाले हैं, जगत्-पूज्य हैं, सब के स्वामी हैं, संसार मे उन का निर्मल यश उपमा रहित है, वे मुनिराज महा ब्रह्मचर्य के भवन हैं, समस्त जीवों का कल्याण करने वाले हैं और संसार के पापों को नाश करने वाले है, हे शांतिसागर स्वामिन्! इसी लिये आप ही मेरे वास्तविक बंधु हैं; ऐसे अनेक मुनियों के स्वामी आचार्य शांतिसागर स्वामी इस संसार से मेरी रक्षा करें।

यशोमाहात्म्यं तेऽनवरतसुगीतं सुरनरैः,
सुगंगापाताभा विशदतरकीर्तिः सिततरा ।
प्रयासो जीवानामघतिमिरविद्रावणपटुः,
स शान्त्यब्धिः सूरिर्यतिगणवरः पातु भवतः ॥९॥

अर्थ—हे शांतिसागर स्वामिन्! आप के यश और माहात्म्य को अनेक देव और मनुष्य सदा गाया करते हैं, आप की अत्यन्त निर्मल कीर्ति गंगा नदी के प्रपात के समान अत्यंत श्वेत है और आपका उद्यम समस्त जीवों के पापरूपी अन्धकार को नाश करने के लिये अत्यंत चतुर है, ऐसे अनेक मुनियों के स्वामी आचार्य शांतिसागर इस संसार में मेरी रक्षा करें।

जगत्कल्याणार्थं क्षितितलमटन् स्वात्ममहसा,
स संसारश्रेणिं खलु विदलयन् ज्ञानपवितः ।
प्रगाढां मिथ्यात्वप्रसररजनिं भेदनकरः
स शान्त्यब्धिः सूरिर्यतिगणवरः पातु भवतः ॥१०॥

अर्थ—जो आचार्य शांतिसागर अपने आत्मा के के प्रताप से संसार भर का कल्याण करने के लिये समस्त पृथ्वी पर विहार करते हैं, जो अपने ज्ञान रूपी वज्र से इस जन्म-मरण रूप संसार की श्रेणी का नाश करते हैं, जिस में मिथ्यात्व फैला हुआ है ऐसी गाढ रात्रि को भी जो भेदन करने वाले हैं; ऐसे वे अनेक मुनियों के स्वामी आचार्य शांतिसागर इस संसार से मेरी रक्षा करें।

क्षमागारः श्रीमान् वृतवृततिसद्मः सुखकरः,
चरन्सम्यङ्मार्गे वहलसरले ज्योतिरचले।
कुकर्मग्रथीं तामनवरतछिंदन् गुणमणिः,
स शान्त्यब्धिः सूरिर्यतिगणवरः पातु भवतः ॥११॥

अर्थ—आचार्य शांतिसागर स्वामी क्षमा के भवन हैं, तपश्चरण रूपी लक्ष्मी से शोभायमान है, व्रत रूपी लताओं के स्थान हैं, समस्त जीवों को सुख देने वाले हैं, सम्यक्ज्ञान रूपी ज्योति से निश्चल और अत्यन्त सरल ऐसे श्रेष्ठ मोक्ष मार्ग में सदा गमन करते रहते हैं, अशुभ कर्म रूपी गाँठ को जो सदा निरंतर छेदन किया करते हैं और अनेक गुण रूपी मणियों को धारण करने वाले हैं; ऐसे अनेक मुनियों के स्वामी आचार्य शान्तिसागर इस संसार से मेरी रक्षा करें।

क्षमां शांतिं धैर्यं धरति यमरूपेण सततं,
क्रियां सर्वां श्रेष्ठां चरति शुभरत्नत्रयमयीम्।
समाधिं ज्येष्ठां तां लहति शिवरूपां झटिति यः।
स शान्त्यब्धिः सूरिर्यतिगणवरः पातु भवतः ॥१२॥

अर्थ—जो आचार्य क्षमा शांति और धैर्य को सदा यमरूप मे धारण करते हैं, जो शुभ रत्नत्रय स्वरूप समस्त श्रेष्ठ क्रियाओं को पालन करते हैं और जो मोक्ष स्वरूप सर्वोत्कृष्ट समाधि को शीघ्र ही प्राप्त कर लेते हैं; ऐसे अनेक मुनियों के स्वामी आचार्य शांतिसागर इस संसार से मेरी रक्षा करे।

महावीर्यो धीरः भवसरणिहंतास्ति जगति,
सदाशादासीं तां त्यजति शुभभावेन भवदाम् ।
अहो स्वामिन् श्रीमन् तव चरणपद्मेषु नमति,
प्रभूत्या भक्त्या वै यतिवरसुधर्मो गुणनिधिः ॥१३॥

अर्थ—वे आचार्य शान्तिसागर अतुल शक्ति को धारण करने वाले है. धीर वीर है, इस ससार मे संसार की जन्म-मरण रूप परंपरा को नाश करने वाले हैं, जन्म-मरण रूप संसार को बढ़ाने वाली आशा रूपी दासी को अपने शुभ परिणामों से सदा त्याग करते रहते है, इत्यादि अनेक गुणों को धारण करने वाले हे श्रीमन् ! हे स्वामिन ! आप के चरण कमलों में अनेक गुणों का निधि मुनिराज सुधर्मसागर अपनी बडी भारी भक्ति से नमस्कार करता है ।

सू रीश्वरं जगद्वन्द्यं,
रि क्तं काममदादिभिः ।
श्री मन्तं भूपसम्मान्यं,
शां तिसिन्धुं नमाम्यहम् ॥ १४ ॥
ति ग्मं तपः प्रकुर्वन्तं,
सा गरं च गुणाम्भसाम् ।
ग भीरज्ञानकूपार,—
र त्नं शान्तिं नमाम्यहम् ॥ १५ ॥

अर्थ—जो आचार्यों मे मुख्य हैं, तीनों लोकों के द्वारा वंदनीय हैं, काम-मद आदि विकारों से रहित हैं, तपश्चरण रूपी लक्ष्मी को

धारण करने वाले हैं और अनेक राजाओं के द्वारा मान्य हैं; ऐसे आचार्य शांतिसागर का मैं नमस्कार करता हूँ। वे आचार्य तीव्र तपश्चरण करने वाले हैं, गुण रूपी जल के सागर हैं और अत्यन्त गंभीर ऐसे ज्ञान रूपी समुद्र के रत्न हैं; ऐसे आचार्य शांतिसागर को मैं नमस्कार करता हूँ।

शान्तिसागरसूरीणां, स्तोत्रं मंगलदायकम् ।
सुधर्मसिन्धुना चेदं, भक्त्या सुरचितं मुदा ॥ १६ ॥

अर्थ—यह आचार्य श्रीशान्तिसागर स्वामी का स्तोत्र मंगल-दायक है और मुनिराज सुधर्मसागर ने भक्ति पूर्वक प्रसन्नता के साथ निर्माण किया है।

इति निर्ग्रन्थमुनिराजसुधर्मसागर-विरचिता
आचार्यशान्तिसागर-पञ्चदशी
॥ समाप्ता ॥

केशरियानाथ-स्तवनम्

(श्रीमुनिसुधर्मसागरकृतम्)

प्रसिद्धे मेवाडेऽप्युदयपुरराज्यान्तर्गते,
धुलेवाख्यो ग्रामो त्रिभवमहिमास्त्वर्गसमकः ।
प्रभोर्माहात्म्याद्यो वृषभजिनदेवस्य महतः,
प्रसिद्धिं प्रालेभे सकलभुवनेऽसावनुपमः ॥१॥

सदुद्यानैः रम्यैर्मुदितहृदयैर्भाति विविधैः,
गिरीणां मालाभिर्विशदरमणीयोऽस्ति भुवने ।
नदीभिर्वक्राभिर्हरितफलपुष्पैः प्रमुदितः,
महारम्यो ग्रामो न च सुरपुरं यस्य सदृशम् ॥२॥

स विंशत्या क्रोशैरुदयपुरतोऽस्तीह नियतः,
महाशैलैर्व्याप्तो वनविटपिभी राजपथकः ।
तथाप्यश्वीयर्यैः शकटगणकैर्यन्त्रशकटैः,
न कष्टं नो दुःखं सुलभगमनं यत्र भवति ॥३॥

महाचैत्यागारं वृषभजिनदेवस्य महतः,
सदा द्वापंचाशद्भुवनततिभिर्वेष्टितमिह ।
समुत्तुङ्गं चास्ते परमरमणीयं गुरुतरं,
कलाचक्रैश्चित्रैः सुरपमनुजं मुह्यति सदा ॥४॥

गृहस्थाचार्यैस्तैर्मठपतिसुभट्टारकगणैः,
तदैलादुर्गस्थैर्गुरुभिरिह निर्मापितमिदम् ।
महाधीशैर्दैगम्बरमतधरैर्जैनपतिभिः,
धुलेवाख्ये ग्रामे वृषभजिनचैत्यालयमहो ॥५॥

तदादौ मुख्यं द्वारमतिशयतुङ्गं सशिखरं,
तदीये पार्श्वे द्वौ पृथुलकरिणौ मंगलकरौ ।
प्रतीहारस्थानं शुभमनतिदूरं सुखकरं,
महाचैत्यागारे वृषभजिनदेवस्य विमले ॥६॥

ततो बाह्योवप्रः परिकरशिलाभिः सुरचितः,
समुत्तुङ्गायामो दृढतरमयो रम्यशिखरः ।
ध्वजास्तम्भैरुच्चैः कनककलशैर्भाति सततं,
महाकूपस्तस्मिन् मधुरसलिलैर्भाति ललितः ॥७॥

इते वीथ्यौ द्वे स्तो जिनभुवनभागे ह्यनुपमे,
द्वितीयद्वारं वा विविधशुभचित्रैः सुघटितः ।
विभात्यत्यन्तं तत्कतिपयसुसोपानपथकैः,
इहापि द्वौस्तस्तौ प्रवरकरिणौ मंगलकरौ ॥८॥

ततो रंगस्थानं गुरुतरसभामण्डपमिह,
ततो वेदी रम्या निखिलमनुजानन्दनवहा ।
जिनेंद्रार्चा तस्यां भवति नवचौकीति कथिता,
तया देवस्थानं जननयनहारीति सुखदम् ॥९॥

ततो गर्भद्वारं परमविभवैर्भाति विमलं,

महापूतं दिव्यं जिनवरसुपीठैर्विनिचितम् ।
जिनानां तत्रार्च्याः दुरितहरिता भान्ति विमलाः,
सुरैर्भव्यौघैस्ताः निखिलसुजनैः पूजितपदाः॥१०॥
प्रधानं गर्भद्वारमतुलविभूत्या च घटितं,
महापुण्यस्थानं भुवि जनचमत्कारकरणम् ।
नमद्देवेन्द्राणां मुकुटमणिभिर्घर्षिततलं,
प्रभोर्माहात्म्यं तत्प्रकटयति दिव्यंजन पदे ॥११॥
स नाभेयः स्वामी त्रिभुवनपती राजतितरां,
महाज्ञानी श्रीमानतिशयचमत्कारघटकः ।
विरागो निर्दोषो वृषभजिनपस्तत्र महितः,
जनानां चित्तं यो सुखयतितरां ब्रह्मरसिकः ॥१२॥
प्रभोर्मूर्तिर्दिव्या वृषभजिनपस्यास्ति विमला,
त्रयोविंशैस्तीर्थैः परिकरचयैर्मंगलकरा ।
विभाति स्वप्नैः षोडशपरमितैस्तर्पणकरैः,
प्रभावैर्लोकानां हरति दुरितं पाति भयतः ॥१३॥
सत्प्रातिहार्यविभवैश्च परिस्कृतं हि,
सन्मंगलाष्टकगणैः प्रविराजमानम् ।
छत्रत्रयाद्यतुलभूतिविभूषितं तं,
श्रीवीतरागवृषभं जिनपं नमामि ॥१४॥
ध्यानेन दग्धनिखिलाघसमूहज्वालं,
उद्दंडकाममदमोहविकारहीनम् ।

१—जिनेन्द्रबिम्ब ।

शान्तं विनष्टभवसंततिकर्मबन्धं,
निर्द्वन्दतामुपगतं वृषभं नमामि ॥१५॥

पादद्वयं तव यदा हि विलेपयन्ति,
काश्मीरकेसरविसारविलेपनेन ।
भव्या अभीष्टफलमत्र तदा लभन्ते,
वांच्छार्थदायकजिनं वृषभं नमामि ॥१६॥

ये ते पदाब्जमिह नाथ विलेपयन्ति,
गंधैश्च केसररसैर्वहलैश्च तेषाम् ।
आशां प्रपूरयसि यच्छसि सिद्धिमत्र,
विघ्न निवारयसि संकटमाशु हंसि ॥१७॥

भव्याः यतो हि घनसारसुकेशरैस्ते,
भक्त्या क्रमाब्जमिह भूरि विलेपयन्ति ।
तेनैव नाथ ! तवकेशरियेति नाम,
जातं सुसार्थकमहोवृषभेश ! लोके ॥१८॥

कर्पूरकेशर सुगंधविलेपनेन,
माहात्म्यमीश ! तव पादसरोजयुग्मे ।
अस्तीह ते वृषभ ! केशरियेति नाम,
प्रख्यापयज्जगति तेन महाप्रसिद्धिम् ॥१९॥

दुग्धाभिषेकमिह ते हि करोति भव्यः,
पुष्पाणि धारयति यो जिनपादयुग्मे ।
द्रव्याष्टकैर्यजति गायति रम्यगीतं,
सौख्यानि सोऽत्र लभते वृषभस्य भक्त्या ॥२०

ध्यानं करोति मनसा तव नाथ ! नित्यं,
पापानि तस्य विगलन्ति न चात्र चित्रम् ।
यस्त्वां प्रपूजयति हर्षभरेण भक्त्या,
शुद्धं "सुधर्ममवगच्छति शुद्धबुद्धिः ॥२१॥

स्तोत्रेण मंगलरवेण महोत्सवेन,
नृत्येन गानशतकेन जिनार्चनेन ।
हृद्वर्तिनिःसृतसुहर्षभरेण यत्र,
भव्या हि पुण्यभरणं समुपार्जयन्ति ॥२२॥

नित्यं ध्वनन्ति कलहाः पटहास्त्रिकालं,
कंसालतालशुभदुन्दभयो हि यत्र ।
नानाविचित्रवरवाद्यरवेण तेन,
भव्याः प्रमोदमुपयान्ति सदैव भूरि ॥२३॥

नाभेय ! देव ! वृषभेश्वर ! तीर्थनाथ !
देवेन्द्रवृन्दनुतपादसरोजयुग्म ! ।
स्वामिन् ! "सुधर्म" फलदायक ! सूरिराज !
धर्मेश ! ते सुचरणं शरणं व्रजामि ॥ २४ ॥

धुलेवाधीश्वरं देवं, जिनेन्द्रवृषभेश्वरम् ।
नौति स्मरति हर्षेण, मुनिः सुधर्मसागरः ॥ २५ ॥

विधुनिधिनिधिचन्द्रे[2] वत्सरे विक्रमाब्दौ,
युगजलधिषडिन्दौ[3] वीरनिर्वाणके च ।

१—श्रेष्टधर्मं अथवा सुधर्म सागरमुनिम् ।

२—विक्रम सं० १९९१ तथा ३-श्री वीर नि० सं० २४६१ में ।

सिर्तशशिशुभवारे पंचमीमाघमासे,
इह समुपगतोऽयं सूरिसंघो मुनीनाम् ॥ २६ ॥

यतिगणवरनाथो धर्मसाम्राज्यनेता,
निखिलभुवन पूज्योजैनदैंगम्बरो यः ।

वृषभजिनपयात्राऽकारि संघेन तेन,
जयतु जयतु सूरिः शान्तिसिन्धुर्मुनीशः ॥२७॥

इति निर्ग्रन्थदिगम्बरमुनिसुधर्मसागरविरचितं
केसरियानाथस्तवनं
समाप्तम् ॥

१—माघ सुदी पञ्चमी सोमवार के दिन संघ श्री केसरिया नाथ की वंदना को पहुँचा था ।

श्री १०८ श्री आचार्य शांतिसागर जी महाराज छाणी दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला सागवाड़ा [डूंगरपुर] के

नियम व उद्देश्य

१-इस ग्रन्थमाला का उद्देश्य प्राचीन संस्कृत प्राकृत साहित्य का उद्धार करना है।

२-प्राचीन आर्ष-ग्रन्थो का सर्वत्र सुलभता से प्रचार हो अतएव ग्रन्थमाला के समस्त ग्रन्थ लागत मूल्य पर दिये जायंगे। त्यागी, व्रती और संयमी को विना मूल्य दिये जायंगे।

३-इस ग्रन्थमाला मे मूल ग्रन्थ के साथ ही भापा ग्रन्थ छप सकेंगे केवल भापा के ग्रन्थ नहीं छपेंगे।

४-प्रत्येक वर्प में एक ग्रन्थ प्रकाशित किया जायगा। यदि ग्रन्थ वड़ा हुआ तो दो तीन वर्प मे पूरा होगा, एक ग्रन्थ पूर्ण हुये, विना दूसरा नहीं छपेगा।

५-इस ग्रन्थमाला की रजिस्टरी हो गई है। इसलिये इसका कार्य नियमित सुचारु रूप से होता है।

६-२५) रु० प्रदान करने वाला स्थायी ग्राहक होता है।

७-१०१) रु० प्रदान करनेवाला सहायक समझा जाता है।

८-एक हजार रु० प्रदान करनेवाला संरक्षक समझा जाता है।

९-इन सब को ग्रन्थमालाके समस्त ग्रन्थ भेट रूप दिये जाते है। इस ग्रन्थमाला की सहायता करना प्रत्येक साधर्मी भाई का आद्य कर्त्तव्य है।

ग्रन्थमाला में प्रकाशित ग्रन्थ ।

१ करुणामृतपुराण	२)
२ रयणसार सार्थ	।=)
३ भक्तामर शतद्वयी	॥)
४ श्रावक प्रतिक्रमण	।=)
५ चतुर्विंशतिका स्तुति	॥=)

भविष्य में प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ ।

=सुधर्मध्यान प्रदीप—मुनि श्री सुधर्मसागर कृत ध्यान का अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ ।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार—पं० चम्पालाल कृत भाषानुवाद

वसुनन्दी श्रावकाचार—पं० चम्पालाल कृत

उमास्वामी श्रावकाचार

षट्कर्मोपदेश रत्नमाला

पता—हीरालाल मुनीम मंत्री,

श्री आचार्य शान्तिसागर छाणी ग्रन्थमाला

सागवाडा [डूंगरपुर]